RNI No. MPHIN/2002/07269

वर्ष 15, अंक-विशेषांक 18 फरवरी 2017

रघुकलश

सामाजिक पत्रिका

दाम्पत्य विशेषांक

संकल्प संग मानसी

परिणयोत्सव
(शनिवार, 18 फरवरी 2017)

वर–वधु के फेरे पड़े, योग–भोग–संजोग स्पतपदी का अर्थ है, सात जनम का योग

RNI No. MPHIN/2002/07269

शुभ विवाह

शनिवार, 18 फरवरी 2017

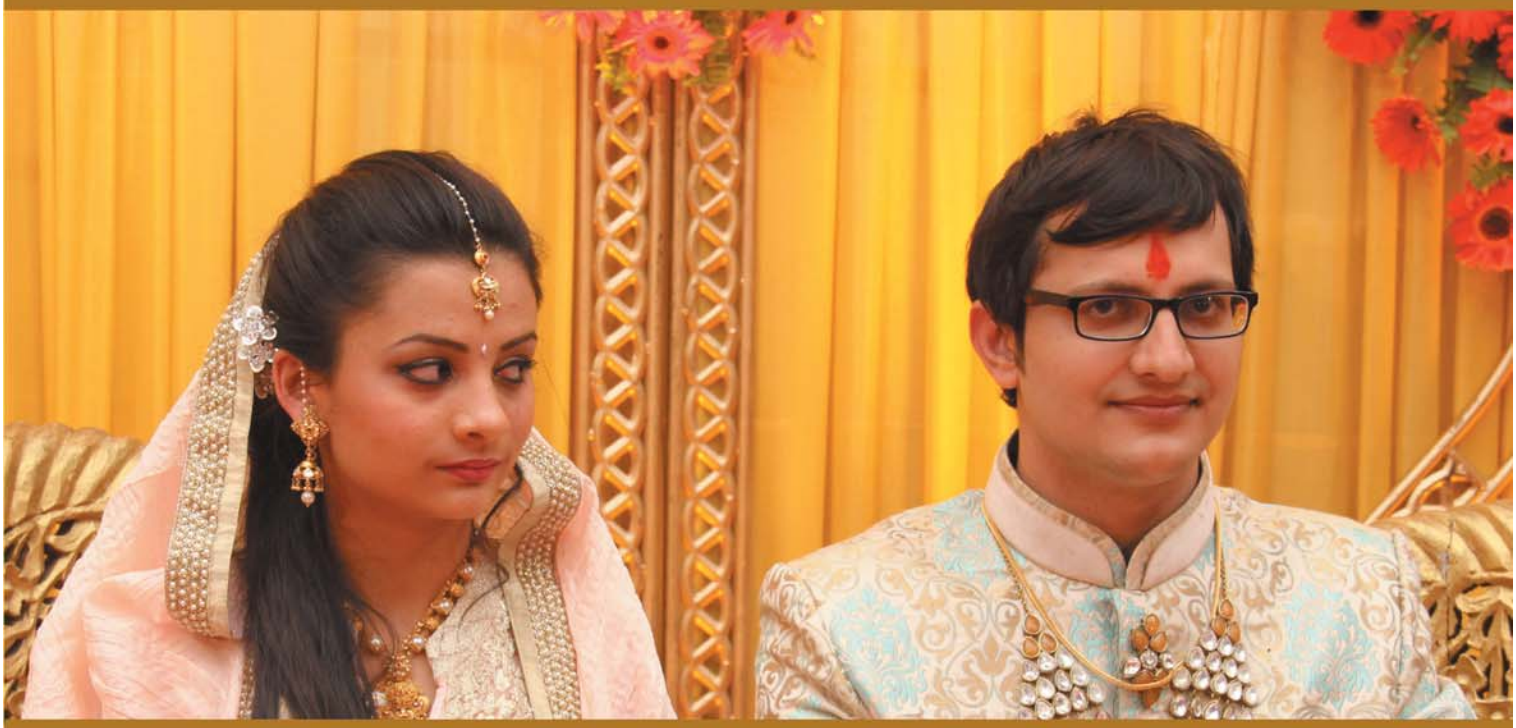

सौ0कां0 मानसी
(B.E. I.T., Bhopal)

संग

चि0 संकल्प रघुवंशी
(B.E. Mech. DTU, MBA Finance, MDI)

18 फरवरी 2017

RNI No. : MPHIN/ 2002 / 7269

अरुण पटेल
संपादक
09425010804, 07552552432
❖
उमाशंकर रघुवंशी
प्रबंध संपादक
09425005454
❖
सहायक संपादक
पलाश पटेल
08982200001
अभिषेक रघुवंशी
रमेन्द्रसिंह पटेल
❖
इंदौर ब्यूरो प्रमुख
राजेश रघुवंशी, 09826578006
रणवीर सिंह रघुवंशी, 08959811503
विदर्भ ब्यूरो प्रमुख
दिलीप सिंह रघुवंशी, 08485031185
अमरावती महाराष्ट्र
❖
खानदेश ब्यूरो प्रमुख
प्रो. डॉ. महेन्द्र जयपाल सिंह रघुवंशी,
नंदुरबार महाराष्ट्र
09423942750
❖
ग्वलियर चंबल संभाग ब्यूरो प्रमुख
ओमवीर सिंह रघुवंशी
09425701313
❖
विशेष संवाददाता
अरविन्द रघुवंशी, भोपाल, 09425023908
संदीप पटेल, सिलवानी 08120916468
लखनसिंह रघुवंशी, गुना, 09893861685
रामनारायण रघुवंशी, भोपाल, 09425372213
सुखेंद्रसिंह रघुवंशी, शिवपुरी, 08357099593
हरवीरसिंह रघुवंशी, अशोकनगर, 08959211089
राममोहन रघुवंशी, सिवनी मालवा, 09098667071
संतोष रघुवंशी, करेली, 07566810605
आकाश रघुवंशी, सोहागपुर, 09754236070
चंदू रघुवंशी, धार, 09826533460
कैलाश रघुवंशी, धार, 09826038723
कोमल सिंह रघुवंशी, पिपरिया, 09752124056
किशोर रघुवंशी, खरगोन, 09826880101
सुरेंद्रसिंह रघुवंशी, उदयपुरा, 09993044340
आलोक विजयसिंह रघुवंशी,
धूलिया (महा.) 09421991991
पी.एम. रघुवंशी, अहमदनगर,
(महा.), 09922079523
संजय रंजीतसिंह रघुवंशी, आकोट,
अकोला, (महा.) 09850509244

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक अरुण पटेल द्वारा प्रियंका ऑफसेट भोपाल से मुद्रित एवं ई–100/41, शिवाजी नगर, भोपाल से प्रकाशित संपादक **अरुण पटेल**
E-mail : arun.patel102@gmail.com
raghukalash@gmail.com

रघुकलश

त्रैमासिक सामाजिक पत्रिका

अखिल भारतीय रघुवंशी (क्षत्रिय) महासभा से सम्बद्ध

वर्ष : 15, अंक : दाम्पत्य विशेषांक 18 फरवरी 2017

विषय–सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	राष्ट्रीय अध्यक्ष की कलम से	2
2.	दाम्पत्य जीवन (शम्भू सिंह रघुवंशी)	3–8
3.	परिवार प्रकरण (डॉ. विजय अग्रवाल एवं श्रीमती गीता अग्रवाल)	9–10
4.	गृहस्थी में निष्ठा और सावधानियॉ (उमाशंकर रघुवंशी)	11–14
6.	विवाह संस्कार के प्रमुख कर्मकाण्ड (श्रीमती गौराबाई रघुवंशी, श्रीमती उमा रघुवंशी)	15–16
7.	नारी की महिमा (संदीप रघुवंशी)	17–18
5.	मध्य रंगीन फोटोग्राफ्स	19–22
8.	सुख–दुःख–संतोष (श्रीमती पूजा रघुवंशी)	23–24
9.	गृहस्थी प्रश्नोत्तरी (श्रीमती अर्चना रघुवंशी)	25–26
10.	महापुरूषों के दात्पत्य जीवन के संस्मरण (भूपेन्द्र रघुवंशी)	27
11.	गृहस्थी में मनन योग्य (विश्वनाथ गाडेश्वर)	28
12.	विवाह संस्कार में वर–वधू की प्रतिज्ञायें (श्री प्रयाग सिंह रघुवंशी)	29–30
13.	शिव पार्वती विवाह (श्रीमती गायत्री शम्भू सिंह रघुवंशी)	31–35
14.	विवाह दिवस कैसे मनाएं (सुरेन्द्र सिंह रघुवंशी, संतोष रघुवंशी)	36
15.	दाम्पत्य संबंधों पर महापुरूषों के विचार (श्रीमती सावित्री रघुवंशी, श्रीमती रामश्री रघुवंशी)	37
16.	स्मरण–नमन (संकल्प रघुवंशी)	38
17.	सम्पादक की कलम से	39–40

राष्ट्रीय अध्यक्ष की कलम से

समाज को विघटन से बचाना जरूरी

समाज परिवारों से ही बनता है। परिवार समाज की एक इकाई है। हमें जैसा समाज चाहिये, उसी के अनुसार हमें लोगों के गृहस्थ जीवन को बनाना होगा। आज ऐसी सामाजिक परिस्थितियॉ निर्मित होती जा रही है, जिसके कारण समाज विघटन की ओर बढ़ता जा रहा है। इस विघटन में पति–पत्नी के रिश्तों में आई कड़वाहट अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसका असर न केवल उन दोनों के आपसी जीवन पर पड़ता है, बल्कि इससे भावी पीढ़ियॉ भी प्रभावित होती है ।

वर्तमान समय में भारतीय समाज का काफी कुछ पाश्चात्यीकरण हो गया है, जिसके कारण नई पीढ़ी स्वतंत्र व स्वछंद जीवन जीने की ओर अग्रसर हो रही है, इसका प्रभाव ऐसे युवक–युवतियों के भावी दाम्पत्य जीवन पर पड़ता है। अतः आज के समय की यह महती आवश्यकता है कि किस प्रकार व कैसे दाम्पत्य जीवन को सुरक्षित बनाये रखा जावे व उसमें प्रेम, स्नेह व उल्लास को प्रस्फुटित किया जाये। इस प्रयास की एक कड़ी के रूप में दाम्पत्य संबंधों का विशेषांक आपके सम्मुख है, जिसमें दाम्पत्य संबंधों की बारीकियों को कागज पर उतारा गया है। इसमें भगवान शंकर, भगवान राम के विवाह की एक झलक, नारी की महिमा, विवाह संस्कार के प्रमुख कर्मकांड, विवाह के दौरान वर–वधू की प्रतिज्ञाएँ, महापुरूषों के दाम्पत्य जीवन के संस्मरण व नारी प्रकरण, पति–पत्नी के दाम्पत्य संबंधों आदि की विस्तृत विवेचना की गई है। इन आलेखों में उन बातों को समाहित किया गया है, जिनसे हम सबको, दाम्पत्य जीवन के संबंध में एक नई दृष्टि मिल सकें। अनेक बार छोटी–छोटी बातों को लेकर पारिवारिक विवाद उत्पन्न होते हैं, उन्हें किस प्रकार से समाप्त किया जावे, उसके संबंध में एक दिशा प्राप्त होती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम किस प्रकार से दाम्पत्य जीवन की गहराइयों को समझते हुए उसे अपने जीवन में अपनाये। पति–पत्नी का संबंध आपसी प्रेम, सद्भाव एवं समर्पण पर आधारित है, जिसमें दोनों एक–दूसरे के पूरक होते हैं तथा उनका जीवन रथ के दो पहियों के समान है, जिसमें एक–दूसरे के बिना जीवन की गाड़ी चलाना असंभव है। यह विशेषांक इस दृष्टि से प्रकाशित किया जा रहा है, ताकि दाम्पत्य संबंधों से संबंधित सुविकसित विचार आम जनता तक पहुॅचे व उसे हम सब अपने जीवन में अपनाये, जिससे नवयुगल अपना भावी जीवन सफल बना सकें।

चि. संकल्प संग सौ.का. मानसी के शुभ विवाह दिनांक 18.02.2017 के सुअवसर पर 'रघुकलश' के विशेषांक के प्रकाशन पर वर–वधू और उनके परिजनों को मेरी ओर से एवं रघुकलश परिवार की ओर से हार्दिक बधाई व आशीर्वाद। ईश्वर उन्हें सदैव स्वस्थ, प्रसन्न एवं उन्नति के मार्ग पर अग्रसर रखें। उनके शुभ विवाह के अवसर पर सभी अतिथियों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनंदन।

शुभ विवाह के अवसर पर 'रघुकलश' के विशेषांक के प्रकाशन की अनुकरणीय पहल हेतु श्री शंभूसिंह रघुवंशी एवं उनके परिजनों को धन्यवाद सहित।

हजारीलाल रघुवंशी
राष्ट्रीय अध्यक्ष
अखिल भारतीय रघुवंशी (क्षत्रिय) महासभा

दाम्पत्य जीवन

शम्भू सिंह रघुवंशी, जिला एवं सत्र न्यायाधीश, हरदा, मो0 9425057446

एकांकी मनुष्य अपूर्ण है। परंतु स्त्री–पुरूष के सहयोग से एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। विधाता ने स्त्री व पुरूष में अपने–आप कुछ ऐसी विशेषताएँ प्रदान की है, जो दूसरे में नहीं हैं। दाम्पत्य जीवन गाड़ी के दो पहियों के समान है, जो विवाह के उपरांत पति–पत्नी के रूप में स्त्री व पुरूष को प्राप्त होता है। प्राचीन काल में इस देश के अधिकांश ऋषि–मुनी गृहस्थ थे, जिनकी संतानें भी थीं। भगवान राम, कृष्ण व शंकर आदि सभी देवता गृहस्थ थे। सिक्ख धर्म के प्रायः सभी गुरू गृहस्थ रहे हैं। इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की श्रेष्ठता, उपयोगिता एवं आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता, जिसमें दो अपूर्ण व्यक्तित्व अपनी–अपनी विशेषता को एक–दूसरे में आरोपित कर एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। मानव जन्म आने के बाद दूसरा सबसे बड़ा सौभाग्य विवाह ही है, जो जन्म की अपूर्णता को पूर्ण करता है और जीवन को उल्लास, सदप्रवृत्तियों से भर देता है और जीवन का एकांकीपन समाप्त हो जाता है। ऐसे गृहस्थ सौभाग्यशाली है, जो पति–पत्नी के रूप में दूध–पानी की तरह एक होकर रहें, उनकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ इस प्रकार मिल जाये कि वे जीवन के कर्तव्य–पथ में समान रूप से अपने–अपने भार लिये चलते रहे–चलते रहे।

दाम्पत्य संबंधों में स्नेह, सद्भावना, कर्तव्य, उत्तरदायित्व का समावेश है, जिससे उसका, परिवार तथा समाज की प्रगति होती है। दाम्पत्य जीवन की सफलता रूप, सौंदर्य, शिक्षा तथा आजीविका पर निर्भर नहीं है, बल्कि दोनों की भावना की उत्कृष्टता–निष्कृष्टता पर निर्भर है, जहॉ कर्तव्य परायणता है, जहॉ समर्पण भाव है, वहॉ जीवन की सारी कमी एक ओर रह जाती है। आपसी ममत्व और आत्मीयता सभी कठिनाइयों को सह लेती है। सभी पारिवारिक समस्याओं का समाधान विश्वास व प्रेम की भावनाओं द्वारा ही संभव है। यह भावना जिन दम्पत्तियों के बीच जितनी अधिक मात्रा में होगी, उनका वैवाहिक जीवन उतना ही सफल माना जायेगा। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि दाम्पत्य जीवन में कर्तव्य, प्रेम सद्भावना, आत्मसम्मान अधिक से अधिक बढ़े, जिससे पारिवारिक और सामाजिक जीवन सुख–शांति से भरा रहे। भारतीय तत्व वेत्ताओं ने विवाह संस्कार का विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया था।

हिन्दू धर्म में विवाह धर्म एवं संतति के लिए किया जाता है, जिसका प्रयोजन एक–दूसरे को समर्पित प्रेम प्रदान करने का है। प्रेम की कसौटी लाभ नहीं बल्कि त्याग है। जो अपने प्रेमी के लिए जितना अधिक त्याग करता है और अपेक्षाएँ जितनी कम रखता है, उसका प्रेम उतना ही सच्चा माना जाता है। वैवाहिक कर्मकांड में वर–वधू अग्नि को साक्षी मानकर उपस्थित संभ्रात व्यक्तियों के सामने यह घोषणा करते हैं कि हमने कर्तव्यों को समझा है व उसे पूरी दृढ़ता के साथ आजीवन निभाने का निश्चिय करते हैं।

सुखी दाम्पत्य जीवन का आधारः–

सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार है, पति–पत्नी का शुद्ध सात्विक प्रेम। जब दोनों स्वार्थ भावना का परित्याग कर देते हैं, तब दोनों के हृदय परस्पर मिल जाते हैं। प्रेम में अंहकार नहीं बल्कि त्याग होता है तथा समर्पण जहॉ जितना गहरा होगा, प्रेम भी उतना ही प्रगाढ़ होगा। सुखी दाम्पत्य जीवन पर पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत उन्नति एवं विकास निर्भर करता है। पति–पत्नी के सहयोग, एकता परस्पर त्याग–सेवा आदि से जीवन के सुख एवं आनंद की अनुभूति की जा सकती है। पति–पत्नी का परस्पर सहयोग जीवन की लंबी यात्रा को सहज बना देता है। यदि नारी शक्ति है, तो पुरूष में पौरूष है। पौरूष के बिना

शक्ति अधूरी है तथा शक्ति के बिना पौरूष व्यर्थ है। सृजन, नवनिर्माण शक्ति और पौरूष के सहयोग से ही संभव है।

पति–पत्नी जीवन पथ पर चलने वाले रथ के दो पहिए है। दोनों के मध्य सामंजस्य होने पर जीवन की प्रगति संभव है। उसी से जीवन में सुख व प्रगति होती है। दाम्पत्य जीवन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पति–पत्नी एक–दूसरे की भावनाओं का ख्याल रखें। एक छोटा सा सिद्धांत है कि मनुष्य दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करें, जैसा वह स्वयं के लिए चाहता है। अपनी इच्छा अनुसार पत्नी को किसी काम के लिए मजबूर न करना व उसकी इच्छा न होते हुए उस पर दबाव डालना, इसी प्रकार स्त्रियॉ पति के स्वभाव, रूचि एवं इच्छाओं का ध्यान रखकर उसे अपनी ही बातों में उलझाये रखे, ऐसे में वैवाहिक जीवन एक बोझ सा लगने लगता है व दोनों का परस्पर व्यवहार दाम्पत्य जीवन का नीरस बना देता है। परंतु यदि पति–पत्नी सदैव एक–दूसरे के भावों, विचारों को ध्यान में रखकर व्यवहार करें तो दाम्पत्य जीवन सफल हो जाता है।

पति–पत्नी का संबंध समानता का है, इसमें न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। जीवन यात्रा में पति–पत्नी परस्पर साथी की तरह होते हैं। पुरूष जीवन क्षेत्र में पुरूषार्थ करके प्रगति का हल चलाता है, वहीं नारी उसमें नवचेतना एवं नवसृजन का बीज बोती है। पुरूष जीवन रथ का सारथी है, तो नारी जीवन रथ की धुरी है। पुरूष रथ को चलाने के लिए पुरूषार्थ करता है, वही नारी साधन सुविधाओं की रक्षा करती है।

गृहस्थ जीवन में जितने भी सुख हैं वे सब दाम्पत्य जीवन की सफलता पर निर्भर करते हैं। यदि दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं है तो अनेक प्रकार के वैभव होने पर भी व्यक्ति सुखी, संतुष्ठ व स्थिर चित न रह सकेगा। जिनके दाम्पत्य जीवन में किसी तरह का क्लेश, कटुता तथा संघर्ष नहीं होता, वे लोग बल, उत्साह और साहसयुक्त होते है। गरीबी में भी जीत का जीवन जीने की क्षमता दाम्पत्य जीवन की सफलता पर निर्भर है। वैवाहिक जीवन की असफलता में आर्थिक, सामाजिक और संस्कारजन्य कारण भी होते हैं, परंतु मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक है, जो व्यवहार की कमी के कारण दाम्पत्य जीवन को असफल कर देता है। पति–पत्नी में यदि पूर्ण प्रेम हो, तो गृहस्थ जीवन स्वर्ग के समान हो जाता है।

यदि दाम्पत्य सुख की प्राप्ति प्रेम से संभव है, तो यह प्रेम त्याग भावना से उत्पन्न होता है। सौंदर्य एवं वासना का प्रेम, प्रेम नहीं है, बल्कि यह एक तरह का धोखा है। जो इनके प्रभाव में फंस जाते हैं, उनका दाम्पत्य जीवन भी बेहाल हो जाता है। परंतु जो प्रेम आत्मा से करते हैं, वे शुद्ध एवं निर्मल हृदय से एक–दूसरे के हो जाते हैं। स्त्री–पुरूष के दाम्पत्य संबंधों का एक आधार परस्पर विश्वास ही है। यदि दोनों के बीच अखंड विश्वास हो तो दुर्भावनाएँ अपने–आप दूर हो जायेगी व दाम्पत्य जीवन विषाक्त होने से बच जायेगा। निस्वार्थ सेवा भी दाम्पत्य संबंधों की सुरक्षा में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। सेवा मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है।

::सफल दाम्पत्य जीवन के कुछ व्यावहारिक सत्य::

01. अपने साथी को (पति पत्नी को, पत्नी पति को) सच्चे हृदय से प्यार करें। प्यार का अर्थ हैः– अपने साथी के दोषों और गलतियों को सहानुभूतिपूर्वक क्षमा करना।
02. यदि आपस में कोई मतभेद या गलतफहमी उत्पन्न हो जावे तो उसे जल्द से जल्द दूर करने का प्रयत्न करें।
03. अहम भाव से सदा दूर रहे।
04. सरलता, मधुरभाषण, क्षमाशील स्वभाव से दाम्पत्य जीवन के सूखे हुए वृक्ष में हरियाली आ सकती है।
05. दाम्पत्य जीवन का मूल आधार पारस्परिक

सहभागिता एवं विश्वास हैं। संदेह कष्टों का जन्मदाता है।

06. सभी परिस्थितियों में एक–दूसरे का साथ दें। दुःख–सुख को मिलकर काटे। बीमारी, पीड़ा, दुख में एक–दूसरे का पूरा साथ दें। आर्थिक, सामाजिक एवं सद्कार्य एक साथ संपन्न करें।

07. पति–पत्नी दो शरीर एक प्राण है, इसलिए निस्वार्थ भाव से एक–दूसरे की सेवा करें।

08. दोष–दर्शन (fault finding) से सदा बचें। कोई सर्वगुण संपन्न नहीं है। यदि आप परिवार में सुख–शांति चाहते हो, तो दूसरे में दोष ढूंढ़ने की आदत का परित्याग करना होगा।

09. स्वेच्छाचारी (free lancer) न बने। हर काम को एक–दूसरे की राय से करें। कोई काम अपने साथी से छिपाकर न करें। अधिकार/बड़प्पन की दुर्भावना को छोड़ें।

10. अतिव्यय एवं फ़िजूलखर्ची (extra vagance) से बचें।

11. दाम्पत्य जीवन में हॅसना, मुस्कुराना तथा मनोरंजन भोजन से भी अधिक आवश्यक है, इसलिए सदा मुस्कुराते रहे। अपने सुख को अपने जीवनसाथी के सुख से सदा पीछे रखे, यह भावना घर को स्वर्ग बना देगी।

12. साथी पर व्यंग न करे और न ही उसे डांटे, न झुँझलाए, बल्कि किसी बात को सीधे ढंग से समझाए। पारिवारिक जीवन में अशिष्ट व्यवहार सदा निन्दनीय एवं त्याज्य है, इसलिए सदैव शिष्टाचार अपनाये।

13. अधिक कामुक न बने। अधिकांश दम्पत्तियों का दाम्पत्य जीवन इसी कलंक से दुखी है।

14. एक–दूसरे के परिवार के सदस्यों पर अनुचित टीका–टिप्पणी न करे।

15. सादगी सबसे बढ़िया फैशन है। विलासिता की वस्तुओं से यथासंभव बचते रहे तथा सादा जीवन व्यतीत करें।

15. बाहरी झंझटों से मुक्त होकर घर में परस्पर प्रेम व आनंद का जीवन जिये। अपने व्यवसाय संबंधी चिंताएँ, परेशानियों को व्यवसाय के स्थान पर ही छोड़कर घर में एक, प्रफुल्लित मन–मस्तिष्क के साथ प्रवेश करें।

पति–पत्नी का प्रेम सदा बहने वाली नदी की तरह स्थाई होता है, वह बरसाती नाले की तरह अल्पकालीन नहीं होता। नदी जब पर्वतों से निकलती है, तो तीवग्रामी होती है तथा चट्टानों से टकराती हुई, शोर करते हुए बहती है, उसमें जलमय प्रवाह अधिक होता है। विवाह के प्रारंभिक दिनों में पति–पत्नी के प्रेम की भी यही स्थिति होती है। उसमें भावुकता का प्रवाह अधिक और वैवाहिक शीतलता का जल कम होता है। जो पति–पत्नी केवल भावुकता का प्रभाव भरकर जीवन जीते हैं, वे बरसाती नाले की तरह सूख जाते हैं। रूप–यौवन का आकर्षण अधिक दिनों तक पति–पत्नी को एक–दूसरे में बांध नहीं पाता। रूप की अपनी कोई मर्यादा नहीं है, यह मनुष्य के मन की उपज है। यह स्थाई भी नहीं होता तथा आयु के साथ ढल जाता है, इसलिए रूप के स्थान पर मानसिक सौंदर्य को देखना चाहिये। यही प्रेम का आधार है, जो सद्विचारों व सद्कर्मों से बढ़ाया जा सकता है। मानसिक सौंदर्य के बढ़ने पर व्यक्तित्व में निखार आता है, जो परस्पर प्रीति को बढ़ाता है।

पति–पत्नी का प्रेम सदा बहने वाली नदी की तरह स्थाई होता है, वह बरसाती नाले की तरह अल्पकालीन नहीं होता। नदी जब पर्वतों से निकलती है, तो तीवग्रामी होती है तथा चट्टानों से टकराती हुई, शोर करते हुए बहती है, उसमें जलमय प्रवाह अधिक होता है। विवाह के प्रारंभिक दिनों में पति–पत्नी के प्रेम की भी यही स्थिति होती है। उसमें भावुकता का प्रवाह अधिक और वैवाहिक शीतलता का जल कम होता है। जो पति–पत्नी केवल भावुकता का प्रभाव भरकर जीवन जीते हैं, वे बरसाती नाले की तरह सूख जाते हैं। रूप–यौवन

का आकर्षण अधिक दिनों तक पति–पत्नी को एक–दूसरे में बांध नहीं पाता। रूप की अपनी कोई मर्यादा नहीं है, यह मनुष्य के मन की उपज है। यह स्थाई भी नहीं होता तथा आयु के साथ ढल जाता है, इसलिए रूप के स्थान पर मानसिक सौंदर्य को देखना चाहिये। यही प्रेम का आधार है, जो सद्विचारों व सद्कर्मों से बढ़ाया जा सकता है। मानसिक सौंदर्य के बढ़ने पर व्यक्तित्व में निखार आता है, जो परस्पर प्रीति को बढ़ाता है।

यौवन शक्ति भी दाम्पत्य प्रेम का आधार नहीं हो सकती। स्त्री–पुरूष का शारीरिक अंतर मात्र आकर्षण का केंद्र नहीं है, बल्कि इसके पीछे मन की शक्ति काम करती है। पुरूष परिश्रमी व बुद्धि प्रधान होता है, स्त्री कोमल, सहनशील और भावना प्रधान होती है। यही अंतर दोनों के शरीर की आकृति में भी होता है। पति अपनी पत्नी से सहनशीलता और भावनाओं का अनुदान प्राप्त करता है। जबकि पत्नी अपने पति से शारीरिक श्रम और बुद्धिमत्ता का लाभ उठाती है। इस प्रकार पति–पत्नी के व्यक्तित्व की विभिन्नता एक–दूसरे को उसके पूरक बनकर पूर्णता को प्राप्त कराता है।

शारीरिक संसर्ग की अपनी मर्यादाएँ हैं। इन मर्यादाओं को तोड़ने पर स्वास्थ्य की हानि और मानसिक दुर्बलता की प्राप्ति होती है। प्रकृति ने स्त्री–पुरूष के संसर्ग में जो सुख का सृजन किया है, उसके पीछे कारण यह है कि सुख से आकर्षित होकर व्यक्ति सृष्टि कर्म को चालू रखे और संतानोत्पत्ति करें। इस सुख की अनुभूति मर्यादित रहने पर उसके रहस्य पर आवरण पड़ा रहता है और यह आवरण जब तक बना रहता है, तब तक सुख है और जब इसकी मर्यादा का उल्लंघन किया जाता है, तो सुख तिरोहित हो जाता है।

स्त्री–पुरूष का भेद जितना प्रकृति ने नहीं बनाया, उतना हमने स्वयं उसे बना दिया है। दो परिजन परस्पर सहयोगी, भाई, मित्र आदि होकर एक–दूसरे के प्रेम में रह सकते हैं। महिलाओं में भी आपस में ऐसा प्रेम देखा जा सकता है। इसी प्रकार स्त्री–पुरूष के बीच के लिंगभेद की यह धारणा मिटा दी जाये तो पति–पत्नी भी एक–दूसरे को अपने साथी, सहयोगी के रूप में स्वीकार कर सकते हैं और यदि वह शारीरिक भेद को भूलाकर आपस में एक–दूसरे के लिए समर्पित रहे तो वह सच्चा दाम्पत्य प्रेम होगा।

पत्नी को सदैव 'रमणी' के रूप में देखना हितकर नहीं है। संबंधों में शारीरिक लगाव जितना कम होगा, प्रेम उतना ही अधिक व प्रगाढ़ होगा। माता–पिता, पिता–पुत्र, भाई–बहन का प्रेम शारीरिक लगाव से रहित होने के कारण पवित्र तथा चिरस्थाई होता है। पत्नी दिन भर माता भगवती के रूप में सेवा करती है तथा पति भी दिनभर पिता के रूप में श्रम व पुरूषार्थ करता है।

विवाह के पश्चात् पति–पत्नी के सुख–दुख एक हो जाते हैं। अपने देश में पुरूषों का काम धर्नाजन करने और स्त्री का काम गृह संचालन करना है। यह कार्य विभाजन शारीरिक–मानसिक क्षमताओं को दृष्टिगत रखकर किया गया है। परंतु इसमें एक–दूसरे की सुख–सुविधाओं का ध्यान रखते हुए उसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है। एक–दूसरे का सहयोग प्रेम में वृद्धि करता है। यदि पति, पत्नी के घर के काम में हाथ बंटा थे तो उसे परम सुख मिल जाता है। इसी प्रकार पत्नी, पति के व्यापार कार्यों में उचित परामर्श दें, तो उससे पति को एक रास्ता मिल जाता है।

पति–पत्नी को एक–दूसरे का यथार्थ रूप लेकर चलना आवश्यक है। किसी व्यक्ति के गुणों में एकदम से वृद्धि तथा दोषों का निवारण एकदम से संभव नहीं है। यदि पति नारी के आदर्श सौंदर्य तथा पत्नी पति के आदर्श स्वरूप को मन–मस्तिष्क में बिठाकर चले तो इससे दोनों को निराशा हाथ लगेगी। इसके विपरीत यदि पति व पत्नी दोनों के यथार्थ स्वरूप को सामने रखकर जीवन यात्रा में चलने का प्रयास करे, तो इससे दोनों में सहयोग व स्नेह से धीरे–धीरे परस्पर प्रेमभाव बढ़ने लगता है।

पति–पत्नी के रिश्तों में कोई भी एक–दूसरे के

लिए अनुपयोगी सिद्ध नहीं होना चाहता। पत्नी सदैव यह अपेक्षा रखती हैं कि पति के हावभाव और क्रियाकर्म से इस बात की पुष्टि होती रहे कि वह उसके लिए बहुत उपयोगी है। जैसे वह विवाह के समय थी, वैसी आज भी हैं। ऐसे में पत्नी की दृष्टि से पति का सम्मान बढ़ जाता है । इसी प्रकार पत्नी के व्यवहार से पति को यह महसूस हो कि वह उसकी नजर में आज भी वह वैसा ही है, जैसा वह विवाह के समय था, तो इससे पति के मन में पत्नी के प्रति सम्मान बढ़ जाता है और दोनों का दाम्पत्य जीवन अधिक सुदृढ़ हो जाता है। इसके लिए दोनों को एक–दूसरे के प्रति प्रेम प्रदर्शन व परस्पर प्रशंसा करना आवश्यक है। यह क्रिया जितनी बार दोहराई जायेगी, जीवन उतना ही परस्पर नवीन एवं आकर्षक बना रहेगा। इसमें शरीर और सौंदर्य की प्रशंसा शारीरिक आकर्षण को बढ़ाता है तथा सद्‌गुणों की प्रशंसा एक–दूसरे का सम्मान बढ़ाती है।

मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है। यदि पति–पत्नी में से किसी से भी भूल होती है तो उसको सुधारा जाना आवश्यक है। भूल सुधारने का यह क्रम निरंतर चलना आवश्यक है, इससे एक–दूसरे के आत्मसम्मान को ठेस नहीं पहुँचती। जिस पक्ष ने भूल की है, वह उसे सुधारने या स्वीकार करने का कार्य करता है, तो वह सराहनीय होता है। यदि दूसरा पक्ष उसकी प्रशंसा करें तो इसका अच्छा प्रभाव जीवन साथी पर पड़ता है। यदि कदाचित गलती करने वाला उसे स्वीकार न करें तो दूसरे को उसे सहन कर लेना ही उचित रहता है।

पति–पत्नी के स्वरूप एवं रूचि में भिन्नता हो सकती है। विवाह उपरांत यह विभिन्नता पूरी तरीके से मिटना आवश्यक नहीं है। ऐसे में एक–दूसरे को समझ लेना और एक–दूसरे की रूचि एवं स्वभाव का सम्मान करना दोनों के हृदय में परस्पर सम्मान की वृद्धि करता है। बाद में यह असमानताएँ या तो स्वयं समाप्त हो जाती है या एक–दूसरे की आदत में आ जाती है। पति–पत्नी कर्तव्य से तो बंधे हुए होते हैं, भावनाएँ भी उन्हें बांधती है। एक–दूसरे की भावनाओं को समझ लेना तथा उसका सम्मान करना दाम्पत्य रूपी भवन की नींव होती है। यह प्रवृत्ति दोनों के दिलों में मधुरता की गंगा बहाती रहती है। जरा से इशारे पर अपने जीवन साथी की इच्छाओं को जान लेना व उसके अनुरूप आचरण करना एक समझदार दम्पत्ति की निशानी है, जो दम्पत्ति एक–दूसरे की भावनाएँ नहीं समझते, उनमें परस्पर प्रेम घटता जाता है और इस तरह एक–दूसरे को प्रेम नहीं दे पाते। ये बातें साधारण सी है, परंतु होती महत्वपूर्ण है। एक–दूसरे के लिए उपहार लेना व सेवा करना आदि में समर्पण की जो भावना जुड़ी रहती है, उसे यदि कोई न समझे अथवा उसे प्रशंसा के जल से न सींचे तो प्रेम की डोर सूखने लगती है । पति–पत्नी का प्रेम एक सुंदर सुसज्जित प्रसाद की तरह होता है, इसमें निराशा, सुख–दुख, उत्पीड़न जैसे खंडहरों का कोई स्थान नहीं है। इन खंडहरों में उल्लू व चमगादड़ निवास करते हैं।

जीवनभर साथ निभाये, हंसने–खेलने और परिवारिक दायित्वों को निभाने में प्रेम ही वह सहस्त्र धारा है, जिसमें स्नेह, उत्साह, आशा, प्रसन्नता, श्रीमेधा आदि निवास करते हैं।

हर पति–पत्नी दाम्पत्य सूत्र में बंधन के पूर्व तथा विवाह के प्रारंभिक काल में दाम्पत्य जीवन की सुखद कल्पना लेकर उल्लास व उमंग के साथ आगे बढ़ते हैं, परंतु कुछ दिनों में उनके स्वप्न साकार नहीं हो पाते तथा उमंगे कुंठित हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि वे इन सपनों को सत्य करने के व्यावहारिक तथ्यों से अनभिज्ञ रहते हैं, इसलिए अपने दाम्पत्य जीवन की बगिया को महका नहीं पाते। ऐसे में उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे जो संकल्प लेकर अपने जीवन पथ में चले थे, उनका नवीनीकरण कराते रहें तथा इन संकल्पों को विवाह दिवसोत्सव (शादी की वर्षगांठ) के रूप में मनाकर प्रतिवर्ष विवाह के इन

संकल्पों का नवीनीकरण करते रहें।

पत्नियॉ प्रायः पति का भोजन बनाने, कपड़े धोने एवं सेवा के अन्य कार्यों में पति के प्रति सहज अनुराग को प्रदर्शित करती रहती हैं, किंतु पति प्रायः बाहरी कार्य को अधिक महत्व देते हैं व पत्नी के इन कार्यों को केवल उसका कर्तव्य समझकर उसकी भावनाओं को महत्व नहीं देते। जबकि पत्नी यह चाहती है कि उसके अनुराग को समझा जाये। ऐसे में आर्थिक सामर्थ्य के दायरे में रहकर प्रशंसा का यह पुष्प प्रेमोपहार के रूप में प्रकट होना चाहिये। प्रायः यह देखा जाता है कि संतान के आने के पूर्व तक पति–पत्नी में काफी सहजता बनी रहती है तथा दोनों एक–दूसरे का बहुत ध्यान रखते हैं, परंतु संतान हो जाने पर दोनों का स्नेह नई पीढ़ी की ओर बढ़ जाता है।

मनोरंजन का भी दाम्पत्य जीवन में व्यापक महत्व है। पत्नी प्रायः घर में रहती है, इसके कारण उसके जीवन में एक नीरसता आ जाती है, वह उदासीन सी रहने लगती है। पति के प्रति उसके व्यवहार में भी अंदर हो जाता है, तब पति उसे अपनी उपेक्षा समझ बैठता है। ऐसे में कुछ दिनों के अंतराल में मनोरंजन का छोटा–मोटा कार्यक्रम बनाकर उसे क्रियान्वित करने से नवीनता बनी रहती है।

अकेली काम–वासना पति–पत्नी के पारिवारिक प्रेम का आधार नहीं है, परंतु यह बिल्कुल अनावश्यक भी नहीं है। संतानोत्पत्ति के लिए तथा शरीर, मन एवं आत्मा के संयोग से सुख की प्राप्ति के लिए उसकी अनिवार्यता भी है और उसका औचित्य भी है। परंतु उसे पेट की भूख की तरह मान लेना नितांत अव्यावहारिक है। विवाह मनुष्य की काम प्रवृत्ति को संयमित व उसे उर्ध्वमुखी बनाने के लिए है। इस सत्य को समझने में जो दम्पत्ति भूल करते हैं, उनका प्रेम बरसाती नाले की तरह थोड़े दिनों में किनारा तोड़कर आगे बढ़कर सूख जाता है। एक पति हर समय केवल पति नहीं होता, बल्कि उसे पिता, भाई, पुत्र या मित्र का दायित्व भी निभाना होता है। इसी प्रकार पत्नी भी हर समय केवल स्त्री नहीं होती, वह मॉ, बहन, पुत्री और मित्र की भूमिका भी निभाती है। इस प्रकार इन सभी चरित्रों को साथ लेकर जो दम्पत्ति जीवन जीते हैं, उनके जीवन में एकांकीपन नहीं होता।

सहयात्री के रूप में पति–पत्नी के मन में यह भावना होती है कि उसके सहयोग से उसका साथी प्रगति करते हुए आसमान की ऊॅचाईयों को छू ले, इसके लिए वह आवश्यक त्याग, बलिदान, सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए भी तैयार रहती है। परंतु इसमें एक महत्वपूर्ण बात यह होती है कि हर एक का अपना–अपना सामर्थ्य एवं स्तर होता है। उसी के अनुसार विकास के क्रम में आगे बढ़ा जा सकता है। यदि साथी के सामर्थ्य व उसके स्तर को धैर्य के साथ नहीं जोड़ा गया तो प्रायः निराशाजनक परिणाम सामने आते हैं। अतः इस व्यावहारिक पक्ष को सदैव याद रखना चाहिये।

सभी सफल शादीशुदा जोड़ो को समर्पित

अपनी गृहस्थी को कुछ ऐसे बचा लिया,
कभी ऑखे दिखा दी, कभी सर झुका लिया।

आपसी नाराजगी को कभी लम्बा चलने नहीं दिया,
कभी वो हस पड़े, कभी मैं मुस्कुरा दिया।

रूठकर बैठे रहने से भला घर कब चलते है,
कभी उन्होंने गुदगुदा दिया, कभी मैंने मना लिया।

खाने-पीने पे कभी विवाद होने नहीं दिया,
कभी गरम खा ली, कभी बासी से काम चला लिया।

मियॉ हो या बीबी महत्व में कोई कम नहीं,
कभी बॉस बन गये, कभी बॉस बना लिया।

:: परिवार प्रकरण ::

डॉ0 विजय अग्रवाल, विशेष न्यायाधीश–श्रीमती गीता विजय अग्रवाल, हरदा, मो0 9424329034

परिवार समाज की इकाई है। विवाह की जोड़ी निश्चित करने में रूप, सौंदर्य को नहीं बल्कि गुण, कर्म व स्वभाव को महत्व देना चाहिये। विवाह कच्ची आयु में न करें और न ही आयु बीत जाने पर। शरीर और मन की दृष्टि से जब व्यक्ति परिपक्व हो तथा अपने पैरों पर खड़ा हो व अपनी और अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाने में समर्थ हो, यही विवाह की सही उम्र है।

विवाह करते समय दोनों पक्षों के चिंतन एवं चरित्र को महत्व देना चाहिये। यही मूल संपदा है, जो जीवन की नाव को पार लगाती है। विवाह उपरांत पति–पत्नी एक प्राण व दो देह बन जाते हैं। वे एक–दूसरे को भरपूर स्नेह, सम्मान व सहयोग प्रदान करते हैं। उनमें परस्पर विश्वास होता है। समझदार दम्पत्ति आपसी मतभेदों को विचार–विमर्श से सुलझा लेते हैं। परंतु कुछ अन्य हठवादी बनकर अपने दाम्पत्य जीवन को नर्क बना देते है। वैवाहिक जीवन का मूलमंत्र यही है कि अपनी मर्जी पूरी न होने पर आक्रोश से न भरे। सफल दाम्पत्य जीवन तभी संभव है, जब स्त्री या पुरूष दोनों एक–दूसरे के पूरक होकर जिये। गलतियां किसी से भी हो सकती हैं, परंतु उनका समाधान विनम्रतापूर्वक निकाला जा सकता है। सौजन्य एवं संस्कार परिवार रूपी रथ की धुरी है। सहिष्णुता के सहारे ही मैत्री चलती है। स्त्री पतिव्रत धर्म व पुरूष पत्नी व्रत धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करें। यही आदर्श दाम्पत्य जीवन है। पारिवारिक सामंजस्य के सहारे ही दो साथियों की मैत्री निभती है, जो उन्हें जीवनभर के लिए एक गठबंधन में बांध देता है, इस प्रकार जो उन्हें सहनशीलता एवं सहिष्णुता का अभ्यास अच्छी तरह से करना चाहिये। दो व्यक्तियों के स्वभाव एक जैसे नहीं होते, परंतु उनमें तालमेल बिठाकर ऐसी रीति अपनाई जा सकती है जिससे उनके आपस में टकराने की संभावना नगण्य होती हो।

पारस्परिक मतभेद होने पर यदि एक पक्ष सामूहिक रूप से उसे न बढ़ने देने के लिए संकल्पित हो, तो ऐसा मतभेद अपने आप काल के प्रभाव में समाप्त हो जाता है। वर–वधू की वृतशीलता विवाह के दिन से प्रारंभ हो जाती है। मात्र पत्नी के लिए पति प्राण होना आवश्यक नहीं है। पति के लिए भी यह आवश्यक है कि वह अपनी पत्नी के प्रति भी उतना ही कर्तव्यनिश्चित एवं व्यवहारशील हो, तभी दोनों का गठबंधन सार्थक रूप से चलता है। पाणिग्रहण संस्कार व्रतों को निभाने हेतु एक संकल्प है, जिसके द्वारा दो आत्माओं का संयुक्तिकरण किया जाता है।

परिवार एक फूलवारी के समान है। वह समाज की एक छोटी इकाई है। राष्ट्र के भावी नागरिक इसी इकाई से निकलते हैं व अपनी प्रतिभा से पूरे समाज के उत्थान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। श्रेष्ठता ने विवाह की संस्था भोग–विलास के लिए नहीं, बल्कि श्रेष्ठ संचालन के लिए बनाई है, जिसका उद्देश्य राष्ट्र को श्रेष्ठ नागरिक देना है। शास्त्राकार का कहना है किः–

तावेहि विवहावहै सह रेती दधाव है।

प्रजां प्रजनतावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्।।

''विवाह का उद्देश्य परस्पर प्रीतियुक्त रहकर राष्ट्र को सुसन्तति देना है''

मनुष्य की यह एक जन्मजात विशेषता है कि छोटे, बड़ों का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार समाज रूपी विराट परिवार में जैसा प्रचलन होता है, जनमानस भी उसी के अनुरूप ढलता जाता है।

महर्ष दयानंद ने कहा है कि भारत में धर्म पुत्रों से नहीं बल्कि सुपुत्रों के प्रताप से ही है। यदि भारतीय देवियों ने अपना धर्म छोड़ दिया होता तो यह देश कब का नष्ट हो गया होता।

एक स्त्री अपने भ्रूण को 09 माह तक अपनी काया में रखकर उसे न केवल पोषण देती है, बल्कि संस्कार भी देती है। गर्भावस्था में यदि उसका चित् सात्तिक है तो वह उत्कृष्ट संतान को जन्म देगी ओर जन्म के बाद भी परिवार में, संस्कारमय

वातावरण बना रहेगा।

विवाह तब करें जब पुरूष सुसंस्कारित एवं स्वावलंबी हो जाये तथा लड़कियॉ यह समझने लगे कि वह गृहस्थी का भार उठा सकने में समर्थ है व स्वावलंबन की दृष्टि से समर्थ है। परिपक्व आयु होने के पूर्व एवं बालक एवं किशोरों का विवाह नहीं करना चाहिये। ऐसा विवाह उनके विकास में भारी बाधा है।

प्रज्ञोपनिषद में कहा गया है किः–

पाणिग्रहण संस्कार स्तदैवैषां च युज्यते।
यदेमे संस्कृतावाला सन्तवपि स्वावलम्बिनः।।
योग्याश्च सन्तवेता बालिका भारमज्जसा।
क्षमा वोढुं ग्रहस्थस्य येनस्युः समयेषपि च।।
स्वालम्बन दृष्ट्या ता प्रतीयेस्न्नपि क्षमाः।
नो पाणिग्रहणं युक्तमविपक्वा वायुषां क्वचित्।।

ऋग्वेद का आदेश है कि– शारीरिक–मानसिक दृष्टि से स्वस्थ समुन्नत एवं योग्य व्यक्ति को ही विवाह करना चाहिये, न कि दुष्ट पतित दुराचारी व्यक्ति को। वंशवृद्धि का अर्थ है कि समाज को, राष्ट्र को अच्छे नागरिक प्रदान करना।

''तमस्मेरा युक्तयो युवानं मर्मृव्यमानाः परियन्त्यापः।

स शुक्रेभिः शिकनमीरेवदस्मे दादायानिध्मोवृत निर्णिगप्सु (ऋग्वेद 2/35/4)

जिनके हृदय शुद्ध, निर्मल और पवित्र हों, तथा जिनकी आयु इस हेतु पूर्ण हो चुकी हो, वे युवक और युवती परस्पर पाणिग्रहण करें। वे शक्ति संपन्न जनविवाह करके परिवार को सतेज बनाएँ। इसके लिए संतानों के श्रेष्ठ कर्म से ही पित्रों व अभिभावकों को सुख मिलता है। व्यक्ति का नाम व यश संतान से नहीं बल्कि उसके सद्कर्मों से बढ़ता है। यदि संतान निकृष्ट स्तर की हो, तो उसे जन्म देने वाले माता–पिता एवं उसके परिजन भी उसका फल भोगते हैं। एक बालक गीली मिट्टी के समान है, उसे परिवार के वातावरण में ढाला जाता है। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी को इच्छित रूप देता है, वैसे ही माता–पिता संतान को उसके गुण, कर्म एवं स्वभाव की संपदा, उसे अच्छे संस्कार देकर करते हैं। परिवार में जैसा वातावरण होता है, प्रवृत्तियॉ भी वैसे ही पनपती हैं और बच्चे उसका सहज अनुकरण करते हैं।

अन्य संस्कारों की भांति विवाह भी एक संस्कार है, जो दो आत्मओं का पवित्र मिलन है। गृहस्थ जीवन की सार्थकता तभी है, जब पति–पत्नी दोनों समान रूप से अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करते रहें, पति–पत्नी ऐसी व्यवस्था करे, जिससे उनकी आपसी आशंकाएँ नष्ट हो। एकता बढ़े। परस्पर विश्वास प्रबल हो व जीवन में उत्साह आये। दाम्पत्य जीवन की सफलता, प्रेम की मात्रा पर निर्भर है। जहॉ पुरूष स्त्री से व स्त्री पुरूष से संतुष्ट रहती है, ऐसे घर में शुभ एवं कल्याण प्रतिस्थापित रहता है। स्त्री जगत की पवित्र ज्योति है, त्याग, सहनशीलता व प्रेम उसका स्वभाव है।

विवाह गुड़ियों का खेल नहीं है, बल्कि यह ऐसी व्यवस्था है, जो हमारे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करती है। विवाह शरीर का नहीं होता, बल्कि आत्मा का होता है, इसलिए विवाह का धार्मिक महत्व है, जो समाज में सुव्यवस्था, स्थिरता, संस्कृति व प्रगति लाता है। पत्नी, पति की उस अव्यवस्था से रक्षा करती है, जिसके कारण समाज में दुराचार फैल जाता है। विवाह हमें एक सच्चा जीवन साथी देता है, जो जीवनपर्यंत साथ चलता रहता है। पति व पत्नी प्रेम व सत्य से एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं। जिन दम्पत्तियों में प्रेम नहीं तथा सत्य नहीं है वहॉ पति–पत्नी के बीच का रिश्ता एक मोहभरा अस्थाई खिंचाव होता है। स्त्रियों की कोमलता ही पुरूषों की कल्पकल्पना है। यद्यपि उनमें शारीरिक सामर्थ्य कम होता है, परंतु फिर भी उनमें जो धैर्य व साहस होता है, वह उन्हें काल की सभी परिस्थितियों में संबल प्रदान करता है। यदि हम वास्तव में नारी उत्थान चाहते हैं, तो हमें केवल इतना करना होगा कि उसे हर क्षेत्र में विकसित होने की व्यवस्था प्रदान करें, उसे उत्साहित करें तथा पूरी निष्ठा से उसका सहयोग करें। दाम्पत्य जीवन की सफलता में जितना आवश्यक प्रगाढ़ प्रेम है, उतना ही आवश्यक प्रत्येक पक्ष को समानता का अधिकार भी है।

:: गृहस्थी में निष्ठा और सावधानियॉ ::

उमाशंकर रघुवंशी, पूर्व सचिव, म0प्र0 विधानसभा, मो0 9425005454

पति–पत्नी के संबंधों में एक बात यह महत्वपूर्ण होती है कि पत्नी मात्र पति की नहीं होती है तथा पति भी मात्र पत्नी का नहीं होता। दोनों के भाई–बहन, मित्र–संबंधी, सखा व परिजन आदि भी होते हैं। जहॉ कोई पति या पत्नी अपने इन परिजनों के साथ प्रेम व्यवहार करते हैं, तो वहॉ दूसरे के मन में ईर्ष्या या द्वेष उत्पन्न हो जाता है, इसलिए पति–पत्नी दोनों के लिए आवश्यक होता है कि वे एक–दूसरे के माता–पिता, भाई–बहन एवं अन्य सगे–संबंधियों का भी यथोचित सम्मान करें। उनके द्वारा इन लोगों के प्रति सम्मान किये जाने पर दूसरे पक्ष की निगाहों में उनका सम्मान बढ़ता है। दाम्पत्य संबंधों का यह अर्थ नहीं है कि अपने परिवार व समाज से कटकर जीवन यात्रा करे, घर परिवार के सभी दायित्वों को भी गहराई से लेना है।

पति–पत्नी के संबंधों का प्रमुख आधार प्रेम होता है। वे पति–पत्नी के साथ–साथ आपस में प्रेमी–प्रेमिका भी होते हैं। पश्चिमी सभ्यता के लोग पति–पत्नी व प्रेमी–प्रेमिका को पृथक–पृथक मानते हैं। यह बात दाम्पत्य संबंधों के संबंध में उचित नहीं है। पत्नी, पति के सुख–दुख में व पति, पत्नी के सुख–दुख में सुखी या दुखी होते हैं। यदि दोनों के मध्य प्रेम न हो, तो वे दोनों एक छत के नीचे रहने वाले सहयात्री मात्र रह जाते हैं।

जीवन संग्राम करके जब पति थका–हारा घर आता है तो उसे पत्नी की शीतल छाव में जो विश्राम मिलता है, उससे उसे नई उर्जा प्राप्त होती है तथा पत्नी भी उसे नया उत्साह देकर अपने आपको धन्य समझती है। पति–पत्नी के बीच प्रेम का यह स्वरूप दाम्पत्य संबंधों को निखारता है, जो जीवनपर्यंत चलता हैं। प्रेम के इस रस को यदि घूट–घूटकर पीया जाये तो इसमें मधुरता एवं आनंद बना रहता है। परंतु यदि इस रस को पूरे एकदम से उड़ेल लिया जावे तो वह पूरे रस को ग्रहण नहीं कर पाता है तथा वह व्यर्थ ही बह जाता है। कई बार वैवाहिक जीवन में पति–पत्नी एक–दूसरे से ऐसी अपेक्षाएॅ करने लगते हैं, जिसकी पूर्ति संभव नहीं है व इस कारण उनके जीवन में एक मंदविष घुलने लगता है। ऐसे में यदि अपने आपको सुधारने का प्रयास नहीं किया गया तो उससे विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसे सुधारने की आवश्यकता हर समय रहती है।

मनुष्य का स्वभाव भूलें एवं गलतियॉ करने का होता है। यह भूलें दाम्पत्य जीवन के दौरान भी होती हैं। यदि इन भूलों को सहज मानवीय कमजोरी के रूप में देखा जाये तो दोनों के प्रेम में कमी नहीं आ पाती है व ऐसे दोषों का परिमार्जन होता रहता है । अनेक बार दोनों के वैचारिक दृष्टिकोण मान्यता एवं सोच में भी अंतर होता है। ऐसे में यदि दोनों अपनी बात पर अड़े रहने की हठधर्मिता दिखाते हैं, तो ऐसे में बात बिगड़ती चली जाती है। परंतु यदि कोई अपने विचार, मान्यता एवं दृष्टिकोण से अपने जीवन साथी के विचारों से सामंजस्य बना ले, तो इससे दोनों के मध्य एक पारस्परिक समझ विकसित हो जाती है, जो दोनों के लिए बहुत उपयोगी होती हैं।

दाम्पत्य संबंधों में यह भी महत्वपूर्ण होता है कि दोनों एक–दूसरे की पसंद व इच्छाओं का सम्मान करें। यदि पति को करेले की सब्जी अच्छी लगती है तथा पत्नी की पसंद उससे भिन्न है, तब भी वह अपने पति की पसंद का ध्यान रखती है। यही बात पति पर भी लागू होती है, तब पत्नी यह कहती है कि यह मेरा कितना ध्यान रखते हैं। इससे दोनों के मध्य पारस्परिक प्रेम बढ़ता है।

प्रत्येक व्यक्ति गुण, कर्म एवं स्वरूप से एक जैसा नहीं होता। यह बात पति–पत्नी में भी लागू होती है। यह भिन्नता दोनों के मध्य विरक्ति का एक कारण बनती है। परंतु यदि दोनों इस विभिन्नता के प्रति सामंजस्य बनाने का प्रयास करें तो दाम्पत्य संबंधों की मधुरता नष्ट होने से बच जाती है।

दाम्पत्य संबंधों में एक–दूसरे के प्रति सद्भावना का उच्च स्थान होता है। इन भावनाओं का प्रवाह दोनों के हृदय में बहता है, परंतु उसे सही दिशा देने का कार्य दोनों के विवेक पर निर्भर करता है। इसके विपरीत अतिभावुकता उन्हें तोड़ देती है, जो नदी के उस प्रवाह के समान होती है, जिसका बाद में नामोनिशान तक नहीं रहता।

विवाह के आरंभिक दिनों में पति–पत्नी के रिश्तों में प्रमुख तत्व आसक्ति होता है, जो समय के साथ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। इस आसक्ति का यदि नियमन न किया जाये तो जीवन यात्रा मात्र दैहिक बनकर रह जाती है। कई बार स्त्री की सेवा की प्रवृत्ति होने के बावजूद भी पुरूषों में केवल दैहिक कामना ही रहती है। अतः पुरूष वर्ग का यह दृष्टिकोण त्याज्य है, तभी जीवन नैय्या ठीक–प्रकार से चल सकती है।

दाम्पत्य संबंधों में पति, पत्नी के लिए धनोपार्जन करता है, उसकी रक्षा करता है। वह मेहनत व श्रम करने की अनेक भूमिका निभाता है। पत्नी भी मॉ की तरह उसकी सेवा करती है, भोजन पकाती है, खिलाती है तथा मित्र की तरह उसे सहयोग देती है और कठिन समय में धैर्य भी बंधाती है। यह परस्पर सेवा ही दाम्पत्य जीवन का सच्चा सुख है।

कुछ समय का वियोग भी कई बार दाम्पत्य जीवन को प्रगाढ़ बनाने में सहयोग करता है और यह वियोग दोनों को और भी निकट ला देता है। साथ–साथ रहते कई बार दोनों एक–दूसरे की भावना और उपयोगिता को समझ नहीं पाते, परंतु दूर रहने से दोनों को एक–दूसरे की कमी का एहसास हो जाता है। इस प्रकार पत्नी जब मायके जाने की इच्छा करे या उसके मायके पक्ष के लोग उसे लेने आये, तो पति को उन्हें निराश नहीं करना चाहिये।

अनेक बार शारीरिक अस्वस्थता, मानसिक उलझन एवं अन्य कारणों से पत्नी, पति की अपेक्षा के विपरीत व्यवहार करती है। ऐसे में पति इसे अपनी उपेक्षा मानने लगता है। इसी प्रकार अनेक बार पति अन्य समस्याओं से ग्रसित होने के कारण पत्नी द्वारा बताये गये कार्य अथवा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता, तब उसे पत्नी अपनी उपेक्षा मान लेती है, बिना यह जाने कि सत्य क्या है। ऐसे में पति–पत्नी दोनों के लिए यह अपेक्षित है कि वे जीवन की परिस्थितियों को समझते हुए एक–दूसरे के प्रति मन में गलत धारणा न बनाये व दोनों एक–दूसरे की वास्तविक परिस्थितियों को समझते हुए अपना व्यवहार करें।

प्रसन्न रहना व उसे सुनना भी एक कला है। प्रसन्नता में व्यक्ति के कार्यों को महत्व देना चाहिए, न कि व्यक्ति को। इसी प्रकार प्रसन्नता सुनने में भी सद्कार्यों व व्यक्ति के व्यवहार को विकसित करने का प्रयास होना चाहिये, न कि अंहकार को स्थान मिलना चाहिये। पत्नी ने यदि कोई कार्य सूझबूझ से किया है अथवा कोई नुकसान होने से बचा लिया, तो उसकी प्रसन्नता होना चाहिये, न कि यह सोचा जाना चाहिए कि यह उसका दायित्व ही है।

पति–पत्नी के बीच जो अपनेपन का भाव होता है, वह प्रायः परस्पर शिष्टाचार और औपचारिकता को समाप्त कर देता है। कुछ दम्पत्तियों में इसकी गहरी समझ व स्वभाव का साम्य होता है। परंतु कुछ में इसका अभाव रहता है। यद्यपि पति–पत्नी के रिश्तों में इस शिष्टाचार और औपचारिकता का कोई स्थान नहीं है, परंतु फिर भी दूसरों के समक्ष इस औपचारिकता का पालन करना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा अनेक बार दूसरे लोगों के सामने पति–पत्नी एक–दूसरे के प्रति अपमानित महसूस करते हैं।

कई व्यक्ति अपने मित्रों के साथ वार्तालाप करते समय कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी करते हैं, जो शिष्टाचार की सीमा में नहीं आते हैं तथा ऐसा व्यवहार वे भी अपनी पत्नी के साथ भी करते हैं व ऐसा वह यह सोचकर करते हैं कि हमारे बीच कोई परायापन नहीं है, परंतु यदि यह व्यवहार वे किसी अपरिचित के सामने करते हैं, तो इससे उन्हें व पत्नी को लज्जित होना पड़ता है। कटू भाषा, गाली गलौच व क्लेश आदि से सभी दम्पत्तियों को बचना चाहिए। एक–दूसरे की भूलों को तथा अनुचित व्यवहार को बताना यदि आवश्यक भी है, तो उसके लिए शिष्ट भाषा का ही प्रयोग होना

चाहिये। मारपीट आदि महामुर्खता की बात है। इसके विपरीत यदि पति का स्वभाव पत्नी के प्रति क्रूर हो गया है, तब भी पत्नी को अपनी विवेक बुद्धि से एक बार यह सोचने का प्रयास अवश्य करना चाहिये कि पति का उसके प्रति ऐसा व्यवहार क्यों हो गया है। वह उन कारणों को दूर करने का प्रयास भी कर सकती है। यदि यह प्रयास धैयपूर्वक चलता रहे तो अनेक बार दाम्पत्य जीवन की खोई हुई खुशियॉ पुनः मिल जाती हैं।

दाम्पत्य जीवन में यदि कोई अप्रिय प्रसंग आता है, तो इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिये कि ऐसा प्रश्न क्यों आया ? भविष्य में ऐसा प्रसंग पुनः न आये, इसका कोई स्थाई हल लाने का प्रयास अवश्य करना चाहिये। यदि ऐसे प्रसंग को यू ही टाल दिया जाये तो बार–बार ऐसे प्रसंगों के आने पर दाम्पत्य जीवन में दरार उत्पन्न हो जाती है।

पति–पत्नी को एक–दूसरे का विश्वस्त होना चाहिये । दूसरे की कही हुई बातों पर सीधे–सीधे विश्वास न करके इस संबंध में एक–दूसरे से बात पूछ लेना चाहिये। पति–पत्नी के लिए यह आवश्यक है कि दोनों एक–दूसरे के विश्वास को कायम रखते हुए उसकी रक्षा करें। बात–बात पर वकील की तरह जिरह करना दाम्पत्य जीवन में अच्छा नहीं होता है। रूपए, पैसे के मामले में पति–पत्नी के बीच दुराव तथा छुपाव ठीक नहीं होता है। पति किस धंधे से कितना कमाता है, यह पत्नी को ज्ञात होना चाहिये। जो पति अपनी आय व उसके स्त्रोत को अपनी पत्नी से छिपाते हैं, वे यह मानने में भूल करते हैं कि यह उनका निजी मामला है। अनेक बार यह अच्छा रहता है कि न केवल पति–पत्नी बल्कि परिवार के सभी सदस्य मिलकर परिवार का बजट बनाये, इससे यह लाभ होता है कि सभी को यह पता होता है कि हमें अपनी चादर में कितने पैर पसारने हैं।

वैवाहिक जीवन में अपने जीवन साथी की तुलना किसी दूसरे से करना गहरी निराशा को जन्म देता है। मैं किसके पल्ले पड़ गया या मेरे गले कैसी रस्सी पड़ गई। इस बातों का कोई अर्थ नहीं होता। इससे उभरने का एक ही मार्ग है कि सकारात्मक सोच के साथ अपने जीवन साथी की कमियों के प्रति सामजंस्य बिठालना। पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन की सफलता का एक आधार उनके बीच शारीरिक एवं मानसिक आकर्षण का बना रहना है। इस आकर्षण को बनाये रखने के लिए सादगी और सरलता को त्याग देना आवश्यक नहीं है। आकर्षण का मूल तत्व सौंदर्य है। यह सौंदर्य सभी स्त्री–पुरूषों के पास होता है। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक बनावट में कुछ न कुछ सौंदर्य आवश्यक होता है। अनेक बार सुंदर कहे जाने वाले व्यक्ति में भी असुंदरता दिखाई पड़ती है। असुंदर व्यक्ति में भी सौंदर्य दिखाई पड़ता है। शारीरिक सौंदर्य के इस उजले पक्ष को यदि सही ढंग से प्रदर्शित किया जाये तो वह आकर्षण को जन्म देता है। महत्वपूर्ण उसका प्रस्तुतिकरण है। यदि पति– पत्नी की इस दृष्टिकोण को उत्पन्न कर सके तो वे भले ही दुनिया की निगाह में आकर्षक न हो, परंतु अपनी निगाह में वे आकर्षक बने रहते हैं।

शरीर की तरह मन का भी आकर्षण होता है। यह आकर्षण शारीरिक आकर्षण से कई गुना महत्वपूर्ण एवं प्रभावी होता है। श्रृंगार व आभूषण बाहरी चमक उत्पन्न कर सकता है, परंतु स्थाई आकर्षण सादगी, सुरूचि, उत्तम स्वास्थ्य एवं स्वच्छता में ही बसती है। प्रसन्नता, मधुर व्यवहार, उल्लास आदि ऐसे गुण हैं, जो मनुष्य के मानसिक आकर्षण को स्थाई बनाते हैं।

पति–पत्नी में से किसी को भी अपनी कौटुम्बिक संपन्नता, सुंदरता, योग्यता या प्रतिभा का अभिमान नहीं करना चाहिये। यह संभव है कि किसी स्त्री का जन्म संपन्न माता–पिता के घर हुआ हो, परंतु पति के घर में यदि ऐसी संपन्नता न हो, तब पत्नी को यह ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने पूर्ववर्ती जीवन की बातों को व्यवहार में प्रकट न करें और न ही मायके की संपन्नता और ससुराल की विपन्नता को लेकर प्रसन्नता/आलोचना करें। इस प्रकार की भूलें सुखी दाम्पत्य जीवन को नष्ट कर देती है। यही बात पति में भी लागू होती है।

संतुलित दाम्पत्य जीवन में स्वावलंबन एवं सहयोग का समन्वय आवश्यक है। संतुलित

सहयोग से परस्पर प्रीति बढ़ती है और घर के हर काम को अपना काम समझकर अपने जीवन साथी के काम में सहयोग देने से हंसी–खुशी के साथ जीवन कटता है। पति–पत्नी अपने–अपने क्षेत्र के काम को मुख्य रूप से संभाले, परंतु इसके साथ ही यदि दूसरे के काम में भी थोड़ा सहयोग देते रहे तो इससे दोनों के मध्य प्रीति और प्रगाढ़ता बढ़ती है।

पति–पत्नी के कार्य का क्षेत्राधिकार सामान्य रूप से एक अलिखित विधान की तरह घर और बाहर में बंट जाते हैं। सामान्य तौर पर पत्नी का कार्य क्षेत्र घर में और पति का कार्य क्षेत्र बाहर का होता है। इस समझौते का अतिक्रमण दोनों के लिए परेशानी का सबब बनता है। यद्यपि दोनों के एक–दूसरे के क्षेत्र में कुछ सहयोग और सुझाव दे सकते हं, परंतु दोनों के क्षेत्रों में अनावश्यक दखलंदाजी उचित नहीं है।

जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण को लेकर चलने से दाम्पत्य संबंधों व उसकी मधुरता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। जीवन में सुख–दुख दोनों ही आते हैं। दोनों को समान रूप से उसे जीवन की अनिवार्यता मानने वाला दम्पत्ति जीवन का सच्चा आनंद उठाते हैं। कोई दम्पत्ति जब अपने भावी दाम्पत्य जीवन को मात्र सुखों की सेज मानकर उसमें प्रवृत्त होते हैं, तब उनकी यह मान्यता जीवन के प्रवाह में टूटने लगती है, तो आने वाले दुख के लिए वे अपने जीवन साथी को उत्तरदायित्व मानते हैं। इस प्रकार ऐसी मान्यता एक दुराग्रह ही है। परंतु जो सुख–दुख को दिन–रात की तरह उसे स्वीकार करते हैं, वे आने वाले दुख से अपनी उन्नति का एक रास्ता भी निकाल लेते हैं। अनेक बार यह होता है कि पति का ऑफीसर नाराज है, ऑफिस में वह उससे अच्छा व्यवहार नहीं करता, इससे पति दुखी है। ऑफिस के रोष को वह पत्नी से लड़–झगड़कर उतारता है, यह मुर्खता है। इसके विपरीत यदि पति बाहर से थका–हारा घर लौटा तथा पत्नी अपने कष्टों का कच्चा चिट्ठा तुरंत उसके सामने रखकर मुक्ति पाने का प्रयास करती है, ऐसे में पति–पत्नी के बीच परस्पर प्रेम फीका पड़ जाता है। ऐसे में पति–पत्नी दोनों के लिए आवश्यक है कि वे इन परिस्थितियों में परस्पर विवेक का व्यवहार एक–दूसरे के प्रति करें।

परस्पर निष्ठा पति–पत्नी दोनों के लिए बहुत आवश्यक है। विवाह के पहले दोनों का जीवन कैसा भी रहा हो, परंतु विवाह के पश्चात् दोनों एकनिष्ठ होकर जीना चाहते हैं। ऐसे में यदि पति के विवाह पूर्व किसी अन्य स्त्री से रहे अनुराग रहा हो, उसका जिक्र वह अपनी पत्नी से कर देता है। इसी प्रकार पत्नी विवाह के पूर्व के किसी अन्य पुरूष के साथ हुए किसी प्रसंग का जिक्र करती है, तो इससे दोनों के बीच एक संदेह का अंकुर उत्पन्न हो जाता है, जो कि राख में दबी चिंगारी की तरह परस्पर विश्वास को समाप्त कर देता है। इस प्रकार ऐसी स्थिति से सदैव बचना चाहिये। दाम्पत्य जीवन एक महती बगिया की तरह है, जिससे परिवार, समाज और राष्ट्र फलता–फूलता है। पति–पत्नी का सुख–दुख सारे समाज के सुख–दुख है। इस प्रकार बुद्धिमान दम्पत्ति आज के इस युग की उक्त व्यावहारिक सच्चाईयों को जानने, समझने व उसके अनुसार व्यवहार करने के लिए तत्पर होते हैं, तो उनका जीवन सदैव खुशहाल होता है और वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के शिखर तक पहुँचते हैं।

उपाध्यात् दशा आचार्यः आचार्याणां भातं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन् माता गौरवेण अतिरिच्यते।।

व्यक्ति के निर्माण में, एक आचार्य (आध्यात्मिक गुरू और वेदों–शाास्त्रों का मर्मज्ञ) उपाध्याय (वेदों को जानने वाला) से दस गुना श्रेष्ठ होता है। पिता सौ आचार्यो के बराबर, और माता हज़ार पिताओं से श्रेष्ठ होती है।

शिववरण सिंह रघुवंशी, मो. 9425006655

विवाह-संस्कार के प्रमुख कर्मकाण्ड

श्रीमती गौराबाई कल्याण सिंह रघुवंशी मो09907307865, श्रीमती उमा रघुवंशी, मो. 8964840322

विवाह मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। धर्मग्रंथो में इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने विवाह संस्कार को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। उन्होंने इस संस्कार का मानस, कवितावली और गीतावली में स्थान–स्थान पर उल्लेख किया है, इस संबंध पर उन्होंने 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' ग्रंथों की रचना और की है। तुलसी साहित्य में दर्शित कर्मकाण्डों में वरदेखी, कलश–स्थापना, मण्डप–स्थापना, लगन देना, बारात प्रस्थान, अग्नि–स्थापना, शाखोच्चार, प्राणिग्रहण, होम, सिन्दूरवन्दन और भॉवर प्रमुख है तथा लोकाचार कृत्यों के अंतर्गत तेल चढ़ाना, अगुवानी, जनवासा, पावड़े पड़ना, नेगचार, जुआ खेलना, जेवनार, गारी, न्यौछावर और मुॅहदिखायी–जैसे कृत्य आते हैं। तुलसी साहित्य में दर्शित, वैदिक एवं शास्त्र विहित विवाह संस्कार के प्रमुख कर्मकाण्ड इस प्रकार वर्णित हैं–

वरदेखी– कन्या के लिए योग्य वर देखने या खोजने को वरदेखी कहते है। यहीं से विवाह संस्कार का श्रीगणेश होता है।

लगन– वर और कन्या के विवाह के तिथि, दिन, घड़ी और नक्षत्र कन्या पक्ष के पुरोहित द्वारा विचारकर, लिखकर विवाह के कुछ दिन पूर्व वर के घर भेजी जाती है, जिसे लगन कहते है।

गौरी–गणेश पूजन– विवाहादि शुभ कार्य निर्विध्न पूर्ण हों, इसलिए गणेश–गौरी–पूजन अनिवार्य माना जाता है।

मण्डप– विवाह के लिए मण्डप का निर्माण कन्या और वर दोनो के घरों में होता है। कन्या के घर के मण्डप में भॉवर होती है। वर के घर के मण्डप में मुॅहदिखायी होती है।

बारात– वर पक्ष के, कन्या के घर विवाह हेतु जनसमूह के साथ साज–सज्जा सहित जाने को बारात कहा जाता है।

अगवानी– जब वर यात्रा कन्या पक्ष के यहॉ पहुंच जाती है तो कन्या पक्ष की ओर से जन समुदाय द्वारा आकर बारातियों का स्वागत करना अगवानी कहा जाता है।

द्वारचार (बारोठा) – बारात आगमन पर उसके स्वागत के उपरांत, कन्या के द्वार पर दुल्हे की आरती की जाती है, जल से अग्र देकर उसे कन्या मण्डप तक ले जाया जाता है। वैवाहिक कार्यक्रम की निर्विघ्न पूर्णता के लिए शांतिपाठ किया जाता है। वर और कन्या पक्ष के दोनों कुल की एकाधिक पीढ़ियों का वर्णन कर वर और कन्या पक्ष के पुरोहितों द्वारा शाखोच्चार और देवी देवताओं के मंत्रोच्चारण किये जाते हैं।

कन्यादान – का अर्थ यह है कि विवाह के पूर्व कन्या का भरण पोषण, विकास एवं सुरक्षा का उत्तरदायित्व कन्या के माता–पिता पर होता है, जो विवाह उपरांत वर व उसके परिजनों पर स्थानांतरित हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई संपत्ति किसी को दान की जाती है, अपितु इसका अर्थ यह है कि कन्या के माता–पिता उसके हाथ पीले करके उसे वर के हाथों में सौंप देते हैं।

पाणिग्रहण– कन्यादान के उपरांत वर–वधु एक दूसरे के हाथों में अपना हाथ सौंप देते है। इस प्रकार दोनों एक–दूसरे का पाणिग्रहण करते हैं। यह क्रिया हाथ से हाथ मिलाने जैसी है। जब दोनों, समाज के सामने एक–दूसरे का हाथ पकड़ लेते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि दोनों एक–दूसरे के उत्तरदायित्व को स्वीकार कर रहे हैं।

ग्रंथिबंधन (गांठ बांधना)– पाणिग्रहण उपरांत वर–वधू को एक गांठ में बांध दिया जाता है। इन्हें दुपट्टे के छोर से बांधने का अर्थ यह है कि दोनों का शरीर व मन संयुक्त होकर एक नई सत्ता का सृजन कर रहे हैं। ग्रंथिबंधन में धन, पुष्प, दूर्वा, हरिद्रा और अक्षर आदि को बांधा जाता है।

ग्रंथिबंधन का अर्थ यह है कि वर–वधू दोनों एक–दूसरे का पूरक बनकर जीवन–यात्रा पूरी करें।

परिक्रमा (भॉवर)– परिक्रमा वर–वधू द्वारा अग्नि के समक्ष की जाती है। पहले चार परिक्रमाओं में कन्या आगे रहती है व वर उसके पीछे। चार परिक्रमा होने पर वर आगे हो जाता है व कन्या उसके पीछे। परिक्रमा के समय परिक्रमा मंत्र बोला जाता है तथा हर परिक्रमा पूरी होने पर एक–एक आहूति गायत्री मंत्र से दी जाती है। परिक्रमा में बांये से दांये चलने का विधान है।

सप्तपदी– भॉवरे लेने के उपरांत सप्तपदी का विधान है, जिसमें वर–वधू साथ–साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ते हैं। दोनो एक–एक कदम आगे बढ़ाते हैं, रूकते हैं व फिर अगला कदम बढ़ाते हैं। इस प्रकार सात कदम बढ़ाये जाते हैं व पृथक मंत्र के साथ एक–एक कदम क्रमशः अन्न, बल, धन, सुख, परिवार, ऋतुचर्या और मित्रता के लिए बढ़ाया जाता है। विवाह उपरांत पति–पत्नी को मिलकर इन सबके लिए कार्य करने पड़ते हैं, इसलिए सप्तपदी की रूपरेखा बनाई गई है।

आसन–परिवर्तन– सप्तपदी के पश्चात् आसन परिवर्तन किया जाता है। अभी तक वधू दाहिनी ओर थी। सप्तपदी के पश्चात् वधू वर की पत्नी बन जाती है, इसलिए उसे बांयी ओर बिठाया जाता है। दांयी ओर से वधू का बांयी ओर आना अधिकार हस्तांतरण है।

वर–वधू की प्रतिज्ञायें (वचन)– आसन–परिवर्तन के उपरांत वर एवं वधू नौ–नौ प्रतिज्ञाएं लेते है। इन प्रतिज्ञाओं के संबंध में पृथक से आलेख इस अंक में है।

शपथ–आश्वासन– विवाह उपरांत पति–पत्नी दोनों एक–दूसरे के सिर पर हाथ रखकर समाज के सामने एक प्रतिज्ञा इस आशय की करते हैं कि वे आजीवन एक–दूसरे के प्रति निष्ठा व ईमानदारी रखेंगे।

सिंदूर दान– विवाह उपरांत वर अंगूठी से वधू की मांग में तीन बार सिंदूर इस भावना के साथ भरता है कि वह सदैव वधू का सौभाग्य बढ़ाने वाला बने।

विदा– कन्या का पिता विवाहोपरांत बारात को कन्या सहित कन्या के पतिग्रह के लिए विदा करता है।

परछन– वधु सहित बारात जब वर के घर वापस आती है, तब वर के द्वार पर वधु को पालकी से उतारकर आरती करते है, जिसे परछन कहते

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रम्हाापि तं नरं न रज्जयति।।

गैर जानकार मनुष्य को समझाना सामान्यतः सरल होता है। उससे भी आसान होता है जानकार या विशेषज्ञ अर्थात् चर्चा में निहित विषय को जानने वाले को समझाना। किंतु जो व्यक्ति अल्पज्ञ होता है, जिसकी जानकारी आधी–अधूरी होती है, उसे समझाना तो स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रम्हा के भी वश से बाहर होता है।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखम्।
न तृष्णयाः परो व्याधिर्न च धर्मो दया पराः।।

शांति के समान कोई तप नही है, संतोष से श्रेष्ठ कोई सुख नही, तृष्णा से बढकर कोई रोग नही

:: नारी की महिमा ::

संदीप रघुवंशी, मैनेजर, ओसराम लाईटिंग प्रा0लि0, मुम्बई, मो0 098201

नारी सृजन की मूर्तिमान अधिष्ठात्री है। वह अपनी काया के सत्य को निचोड़कर अभिनव प्राणियों को उत्पन्न करती है। उसे जीवन कृति के रूप में देखा जा सकता है। स्नेह उसकी प्रवृत्ति है व अनुदान उसका स्वभाव है। नारी पुरूष की अर्द्धगिनी है, वह उसकी सबसे बड़ी मित्र है। जीवन संगिनी के रूप में वह पुरूष को उपर उठाती है, जो उसका अपमान करता है, काल उसे नष्ट कर देता है।

नारी स्वभावतः गृहलक्ष्मी होती है। घर की अंदरूनी व्यवस्था से लेकर परिवार में सुख–शांति तथा घर में सौम्य वातावरण के निर्माण का दायित्व नारी को ही निभाना पड़ता है। मनुस्मृति में कहा गया हैः–

'' पूजा हि गृहदीप्तयः ।

स्त्रियः श्रियश्च न विशेषोस्ति कश्चन।।''

गृहस्वामिनी स्त्री पूजा के योग्य है। इसमें और लक्ष्मी में कुछ भी भेद नहीं है। एक सम्मुनत नारी परिवार को स्वर्ग बना देती है, उसकी क्षमता विकसित करने में किया गया श्रम, मनोयोग एवं धन असंख्य गुणा वापस लौटता है। नारी को सम्मान देने वाले असंख्य गुणा प्रतिफल प्राप्त करते हैं। एक परिवार स्त्री और पुरूष के संयुक्त अनुदान का प्रतिफल है, जिसमें स्त्री की भूमिका ज्येष्ठ और पुरूष की भूमिका कनिष्ठ होती है। स्त्री खान है और पुरूष उससे निकलने वाला खनिज है। जैसी खान होती हैं, धातुएं भी उसी के अनुसार निकलती है। श्रेष्ठ नारियॉ अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार संतानें जनती हैं। वे मलयाचल भूमि (चंदन–वृक्ष) के समान है। उनके सानिध्य से सभी उसी अनुसार महकने लगते हैं। एक सुसंस्कारित नारी अपने परिवार में स्वर्गीय परिस्थितियॉ उत्पन्न करने में समर्थ है। परिवार में सुव्यवस्था रखकर एक छोटे से घर को सौंदर्य से भरकर उसे सुव्यवस्थित बनाने में उसकी नियती शामिल है। नारी का अंतःकरण एक विशेष कर्तव्यों से भरा है, उसमें आत्मीयता, उदारता, कोमलता पुरूषों की तुलना में अधिक होती है। इसी विशेषता के कारण वह कर्कश प्रवृत्ति के लोगों को भी नरम बना देती है व उनमें सहजता व सहृदयता का संचार कर देती है। यदि घर के लोगों में शालीनता, शिष्टाचार मौजूद हो, तो एक सुसंस्कारित नारी की भूमिका सोने में सुहागा बन जाती है। बच्चे मॉ के शरीर के ही अंग है। उनमें संस्कारों का परिपोषण एवं अभिवर्द्धन माता के ही द्वारा होता है। कोई भी समाज तथा राष्ट्र तभी आगे बढ़ सकता है, जब नारी की सुसंस्कारिता पर समुचित ध्यान दिया जाये। बौद्धिक ज्ञान तो पाठशालाओं में दिया जाता है, परंतु व्यक्तित्व को उत्कृष्टता की ऊचाई में लिये जाने का पुनित कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही संभव है, जिसमें नारी की महती भूमिका है।

नारी में करूणा व स्नेह प्रकृति प्रदत्त है। शास्त्रों में नारी की उपमा देवी से की गई है। बच्चों में उत्कृष्ट गुणों को भरकर उन्हें श्रेष्ठता की उॅचाई में ले जाने में वह अपनी कोई कसर नहीं छोड़ती। वह भावना प्रधान है तथा मणी की तरह स्वच्छ है। उसकी भावना को चोट नहीं लगने पाये, उसे समुचित स्नेह, सम्मान, प्रशिक्षण एवं सहयोग दिया जाये, तो वह कल्पवृक्ष की तरह है।

प्रसिद्ध कवि रस्किन ने कहा है कि '' माता का हृदय एक स्नेहपूर्ण निर्झर है, जो सृष्टि के आदि से अनवरत झरता हुआ मानवता का सिंचन कर रहा है।''

नारी को परिवार व समाज के अन्यान्य सदस्यों का स्नेहभरा सम्मान चाहिये तथा उसकी बहूमुखी प्रतिभा को ऊॅचा उठाने के लिए उसे समुचित प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन की भी आवश्यकता पड़ती है। इस कारण से शास्त्राकारों ने नारी को कदम–कदम पर सहयोग व सम्मान देने का निर्देश दिया है, तभी परिवार में सुख–शांति एवं सुव्यवस्था

कायम हो सकती है। शास्त्रकारों ने कहा है कि :–

यदि कुलोन्नयने सरसं मनो,
यदि विलासकलासु कूतूहलम्।
यदि निजत्वमभीप्सितनेकेदा,
कुरू सत्तां श्रुतशीतवती तदा।।

''यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे कुल की उन्नति हो, यदि तुम अपना और अपनी संतान का कल्याण करना चाहते हो, तो अपनी कन्या को विद्या, धर्म और शील से युक्त करो।''

नारी में समुचित आत्मबल है। यदि हमें सद्प्रवृत्तियों से भरा समाज बनाना है तो नारी के प्रसुप्त मनोबल को उभारना होगा, उसमें शक्ति का अजस्त्र स्त्रोत छिपा है। उसे उजागर करने की देर है। वह मनस्वी भी है व तेजस्वी भी है, पर उसकी विशेषताएँ दबी रहती हैं। यद्यपि स्त्री–पुरूष एक ही रथ के दो पहिए हैं, परंतु जब तक नारी के इन गुणों को विकसित न किया जाये, तब तक वह दलित ही बनी रहती है।

परिवार में संचालिका के रूप में परमेश्वर ने स्त्री को बनाया है। पत्नी के रूप में वह नये परिवार का श्रीगणेश करती है तथा जननी के रूप में उसका विकास एवं विस्तार करती है। गृहणी के रूप में वह परिवार के सदस्यों को एक सूत्र में पिरोती है, इसलिए गृहलक्ष्मी के रूप में वह नर रत्नों की खान है। उसे देव मानव के निर्माण का स्वर्ग कहा जाता है, जो वह एक छोटे से घर में कर दिखाती है। नारी श्रेष्ठता की उत्कृष्टतम कृति है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे विकसित होने दिया जाये तथा अपना कौशल दिखाने का अवसर दिया जावे। उसे किसी भी प्रकार से तोड़ा या मरोड़ा न जाये। नारी दिव्यवान है, उसे जीवन की कलाकृति के रूप में देखा जा सकता है। स्नेह उसकी प्रवृत्ति है तथा अनुदान उसका स्वभाव है। जीवन संचालन के सभी तत्वों को श्रेष्ठता ने उसमें कूट–कूट कर भरा है। ईश्वर ने उसमें कुरूपता को सुंदरता के रूप में प्रगाढ़ करने की अपूर्व क्षमता दी है। मनुष्य के पास जो कुछ भी अपना कहलाने योग्य है, वह एक स्त्री का अनुदान ही है। जीवन उसी के उदर से उपजता है। नारी शरीर में रहने वाली आत्मा को यदि श्रद्धा की दृष्टि से देखा जा सके तो वह सौंदर्य की मूर्ति है, उसमें मधुरता, करूणा, तपस्या व पवित्रता है। नारी सत्य है, शिव है, सुदंर है। उसके अनुदानों को पाकर यह समस्त विश्व कृतार्थ होता है।

अष्टौ गुणा पुरूषं दीपयंति प्रज्ञा सुशीलत्वदमौ श्रुतं च।
पराक्रमश्चबहुशाषिता च दानं यथाशाक्ति कृतज्ञता च।।

आठ गुण मनुष्य को सुशोभित करते हैं – बुद्धि, सुन्दर चरित्र, आत्म–नियंत्रण, शास्त्र–अध्ययन, साहस, मितभाषिता, यथाशाक्ति दान और कृतज्ञता।

पारूष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि संजयः।
असम्बद्धप्रलापाश्च वाड मयं स्याच्चतुर्विधम्।।

कठोर वचन, मिथ्या भाषण, चुगलखोरी, निष्प्रयोजन बकवास ये चार वाणी के दोष है।

उपकारः परो धर्मः परोर्थः कर्मनैपुणं।
पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता।।

''निस्वार्थ भाव से लोगों की सहायता करना सर्वोत्तम धार्मिक आचरण है तथा सर्वोत्तम संपत्ति किसी भी प्रकार के कार्य में निपुणता है, सुपात्र व्यक्तियों को दान देना सर्वोत्तम दान है। इसके पश्चात अत्यधिक लालच न करते हुए अपनी इच्छाओं की पूर्ति और अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है।''

श्रीमती गायत्री
शम्भूसिंह
रघुवंशी

श्रीमती पूजा
संदीप सिंह
रघुवंशी

श्रीमती अर्चना
भूपेन्द्र सिंह
रघुवंशी

।। सप्तपदी के सप्त वचन ।।

ॐ इश एकपदी भव।
तू पहला कदम अन्न के लिए रख।
to nourish each other.

ॐ ऊर्जे द्विपदी भव।
तू दूसरा कदम बल के लिए रख।
to grow together in strength.

ॐ रायस्पोशाय त्रिपदी भव।
तू तीसरा कदम संपत्ति के लिए रख।
to preserve our wealth.

ॐ मायोभव्याय चतुष्पदी भव।
तू चौथा कदम सुखचैन के लिए रख।
to preserve our joys & sorrows.

ॐ प्रजाभ्यः पंचपदी भव।
तू पांचवा कदम संतति के लिए रख।
to care for our children & parents.

ॐ ऋतुभ्यः षट्पदी भव।
तू छठा कदम ऋतुओं के लिए रख।
to be together for ever.

ॐ सखा सप्तपदी भव।
सातवां कदम रखकर तू मित्र बन।
to remain friends, life long.

परिणयोत्सव

शनिवार, 18 फरवरी 2017

हार्दिक बधाईयाँ

(Photos from Sankalp-Mansi Ring Ceremony dated 13th February 2016)

श्रीमती अर्चना सौ.कां. मानसी श्रीमती पूजा

श्रीमती उमादेवी, श्रीमती रामश्री, कु. रितिशा, मानसी–संकल्प, कु. गीत @ सान्वी, श्रीमती गौराबाई, श्रीमती सावित्री

:: सुख-दुःख-संतोष ::

संकलनकर्ता–श्रीमती पूजा रघुवंशी, मुम्बई, मो0 09579623855

प्रश्न 1 :– मन का स्वास्थ्य क्यों बिगड़ता है ?

उत्तरः– हमारा स्वास्थ्य खराब होने का कारण है हमें जो चाहिए वह प्राप्त न होना और हमें जो नहीं चाहिए उसका होना। इन दोनों में से हमारे हाथ में एक भी नहीं है, फिर हम दुःख क्यों करें? मेरा जीवन भी मेरे हाथ में नहीं है, वहॉ मैं यह या वह क्यों मॉगू? सत्य तो यह है कि हमारे मन जैसी बातें होती नहीं इसलिए हम दुःखी है ऐसा कहने की अपेक्षा वह बात हमारे मन में बैठ गई है, यही दुःख का मूल कारण है। वस्तुतः सुख– दुःख यह वस्तु में न रहकर हमारी मानसिक अवस्था पर निर्भर है। कोई वस्तु की चोरी होने पर उस समय आप निद्रा में, आनंद में रहते हैं। किन्तु जाग जाने पर वस्तु के चोरी होने की जानकारी होने पर दुःखी हो जाते हैं। अर्थात् दुःखी होता मन। इसीलिए दवाई देनी हो तो मन को दो। परमेश्वर सर्वव्यापी है, उसकी इच्छा प्रमाण माने तो सुख–दुःख मानने का कारण ही शेष नहीं रहेगा।

प्रश्न 2 :– सुख किसमें है?

उत्तरः– सुख विषयों में नहीं है, निर्विषय होने में है। विषय मॉगने से रामजी देंगे, किन्तु तब आप दुःखी होंगे। "अहं कर्तृत्व" यह सब दुःखों का मूल है। मेरे किए बिना कोई कार्य होगा नहीं, ऐसा कहना गलत है। विषय में सुख नहीं है, सुख की अनुभूति स्वयं हम में ही होती है। वास्तविक सुख सनातन है। सनातन वस्तु केवल ईश्वर के पास है। अतः सतत् ईश्वर नाम स्मरण करने उसके नाम को जपने में रहें। इसी में सच्चा सुख, संतोष और शांति हैं।

प्रश्न 3 :– गृहस्थी में सुख कैसे प्राप्त होगा?

उत्तरः– पति–पत्नि की सदाचरण के साथ ईश्वर के प्रति निष्ठा रहे उन्हें प्राप्त परिस्थिति में संतोष मानने का अभ्यास रहें तो गृहस्थी में अवश्य सुख प्राप्त होगा। संक्षेप में, सुखी होने का मार्ग है कि बुरी बातें करने के विचार को त्यागना और अच्छी बातें करने का हरसंभव प्रयत्न करना। ऐसा करने से ही सुख की प्राप्ति होगी।

प्रश्न 4 :– आनंद प्राप्ति कैसे होगी?

उत्तर :– ईश्वर आनंदमय है, आनंद हमारे मन पर निर्भर है। यह यदि सत्य है, तो हम प्रतिदिन दीपावली क्यों न मनाएँ? हम सतत् आनंद में रहें, इस हेतु आनंदमय ईश्वर का आधार लें। हमारे अंतरंग में आनंदमय भगवान उपस्थित हैं ही, ईश्वर से ही 'मैं' भी हूँ, इस 'मैं' को जानने के लिए इंद्रियों का उपद्रव शांत कर हम अंतर में ही आनंद को खोजें। इससे हमें 'मैं' का स्वरूप आनंदमय प्रतीत होने लगेगा, ईश्वर की अनुभूति होगी।

प्रश्न 5 :– सत्कर्म करने के पश्चात् भी हमें संतोष प्राप्ति क्यों नहीं होती?

उत्तर :– किसी रोगी के पेट में यदि कृमि हुए और यदि उसे खूब खिलाया जावे, तो वह शरीर का पोषक होते हुए कीड़ों की वृद्धि होती है। उसी तरह हम सत्कर्म करते समय मन में विषयों के प्रति प्रेम रखकर वह करते हैं तो विषयों का ही पोषण होता है। उससे संतोष नहीं होता। इसलिए कर्तव्य बुद्धि से कर्म करें।

प्रश्न 6 :– हमारा संतोष स्थाई कैसे होगा?

उत्तरः– प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार ईश्वर पूर्ति करते हैं। ईश्वर दाता है, उसका मुझे आधार है, वह मेरा कल्याणकर्ता है। इसका स्मरण रहा तो, जो प्राप्त हुआ वह ईश्वर इच्छा से ही प्राप्त हुआ ऐसी धारणा कर वर्तमान परिस्थिति में संतोष बना रहेगा। जिसका संतोष ईश्वर पर निर्भर है, उसका संतोष हर परिस्थिति में स्थाई रहेगा। संक्षेप में, 'मुख में नाम, हाथ में काम, उसे रहे आराम' यही संतोष का मार्ग है।

प्रश्न 7 :– शांति प्राप्ति के लिए क्या करें?

उत्तर :– निरपेक्षता शांति का मूल है। मन के

विपरीत कुछ होने पर ईश्वर का तत्काल स्मरण करें जिसे अपने आप शांति मिलेगी। मन की शांति स्थिर रखकर क्रोध कर सकते हैं ऐसी बात असंभव नहीं है। शांति परमात्मा के स्मरण से प्राप्त होती है। यह स्मरण अखण्ड़ रखें।

प्रश्न 8 :– स्वयं को छोड़कर अन्य प्रत्येक व्यक्ति सुखी क्यों दिखता है?

उत्तरः– हमारे पास जो नहीं है वह जिसके पास है वह सुखी होगा। यह धारणा हम बनाकर रखते हैं, किन्तु वह वैसा नहीं रहता। उसका दुःख हमें ज्ञात नहीं रहता। और वह स्वयं को यदि सुखी समझता हो तो वह शराब के नशे जैसा नशा समझें। हमारी परिस्थिति परमात्मा की इच्छा से हुई है ऐसा मानना ही सुखी, संतोषी रहना है।

प्रश्न 9 :– क्या सुख वस्तु पर निर्भर है?

उत्तरः– सुख प्राप्ति की हमारी सभी कल्पनाएँ मिथ्या हैं। एक ही वस्तु किसी को सुखदायक होती है और दूसरे को दुःखदायी होती है। अर्थात् वह वस्तु मूलतः दोनों भावमय नहीं है, सुखदायी नहीं है, दुःखदायी भी नहीं है। जो वस्तु हमें आज सुखकारक लगती है, वह कल वैसी ही रहेगी ऐसा नहीं है। हमारी बुद्धि स्थिर न रहने के कारण हमारी सुख की कल्पना भी स्थिर नहीं और इसी के कारण ही किसी वस्तु में सुख है, यह कल्पना भी मिथ्या है।

प्रश्न 10 :– दुःख कितने प्रकार का होता हैं ?

उत्तरः– दुःख तीन प्रकार का होता है–एक– जन्मजात दुःख, वह इतना कष्टदायक नहीं होता। दो– परिस्थिति जन्य दुःख, वह परिस्थिति परिवर्तन से दूर होता है। तीन– कल्पना का दुःख, जो ईश्वर के स्मरण से दूर होता है। चिंता का दुःख याने कल्पना का दुःख। गृहस्थी में एक बात हमेशा ध्यान में रखें, यदि गृहस्थी चाहिए और दुःख नहीं हो तो ऐसा कहना पागलपन है।

प्रश्न 11 :– क्या सुख और संतोष में अंतर है?

उत्तरः– अवश्य ही है। सुख वस्तु पर निर्भर होता है, वह परावलंबी है। दूसरे से जो प्राप्त करना है वह सुख, स्वयं से प्राप्त होता है वह संतोष। कोई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से सुखी न भी हो, किन्तु मानसिक दृष्टि से सुखी हो सकता है, इसे ही संतोष कहते हैं।

प्रश्न 12 :– क्या करने से चिन्ता कम होगी?

उत्तरः– चिन्ता कम करने का रामबाण इलाज है आज ही से चिन्ता पूर्णतः छोड़कर उतना समय नामस्मरण में व्यतीत करें। यदि है तो रहने दो, नहीं तो नहीं सही, इस तरह की मानसिक अवस्था में जो रहेगा उसी की चिन्ता दूर होगी।

प्रश्न 13 :– मन पर संयम रखने के उपाय क्या है?

उत्तरः– उसके दो उपाय हैं। प्रथम पातंजल योग और दूसरा ईश्वर भक्ति। पातंजल योग का अर्थ युक्ताहार, विहार, नियमित रहना और इंद्रिय निरोध करना। किन्तु यह कठिन मार्ग है। ईश्वर भक्ति का अर्थ ईश्वर के प्रति प्रेम। इस प्रेम के साधन उसका नामस्मरण, उसकी कथा, कीर्तन, साधु समागम और उसमें भी सदगुरू कृपा, होते हैं। सदगुरू कृपा की वर्षा निरंतर चालू रहती है किन्तु हमें उसकी कृपा की पात्रता पाने के लिए सतत् नामस्मरण करना होगा।

श्री समर्थ सद्गुरू ब्रम्हाचैतन्य महाराज गोंदवलेकर के प्रवचन, संग्राहक श्री गो0सी0 गोखले से साभार

नरस्याशरणं रूपं रूपस्याशरणं गुणः।
गुणस्याशरणं ज्ञानं ज्ञानस्याशरणं क्षमा।।

भावार्थ– मनुष्य का आभूषण उसका रूप होता है, रूप का आभूषण गुण होता है, गुण का आभूषण ज्ञान होता है और ज्ञान का आभूषण क्षमा होता है। अर्थात् रूपवान् होना भी तभी सार्थक है जब सच्चे गुण, सच्चा ज्ञान और क्षमा मनुष्य के भीतर हो।

:: गृहस्थी प्रश्नोत्तरी ::

संकलनकर्ता–श्रीमती अर्चना रघुवंशी, व्यवहार न्यायाधीश, उज्जैन, मो0 8458904671

प्रश्न 1:– गृहस्थी में हमारा क्या दायित्व है ?

उत्तरः– हर व्यक्ति बोलते समय "मैं और मेरा" ऐसी भाषा बोलता रहता है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को इन दोनों के प्रति दायित्व रहता है। मेरा इस शब्द में शरीर और उस संबंध में सभी बातें निहित हैं। जीवन में "मैं" का दायित्व परमेश्वर प्राप्ति है और देह के दायित्व में धर्म, शास्त्र और नीति को सम्हालकर संबंधित व्यक्ति से होने वाला आचरण समविष्ट रहता है। अर्थात् जिस किसी से जैसा हमारा संबंध होगा उसके अनुसार उससे हमारा दायित्व कुशलता से पार लगाना। दायित्व का अर्थ वापसी लाभ की अपेक्षा न रखते हुए जिस अर्थ में जो करना योग्य रहेगा वही करना है। मनुष्य को "मैं" और "देह" इन दोनों के प्रति दायित्वों को समान सुख से निभाते रहना चाहिए।

प्रश्न 2 :– गृहस्थी की चिन्ता कैसे कम होगी?

उत्तरः– पूर्ण उत्तरदायित्व परमात्मा को सौंपकर सतत् संतोष और आनंद में रहें। जो होता रहता है वह ईश्वर ही हमारे लाभ हेतु करता है और हमसे जो कार्य होते हैं वह हम नहीं, परमात्मा करता है, ऐसा प्रत्येक घटना में और अपनी प्रत्येक क्रिया में समझे और भावना रखे। चिंता न करना यह भी हमारे हाथ में नहीं है, इसलिए हम चिन्ता करते ही हैं। इसलिए सतत् भगवत चिन्तन में रहने के अभ्यास से चिन्ता का प्रसंग ही नहीं आयेगा।

प्रश्न 3 :– गृहस्थी के प्रति आसक्ति कैसे कम होगी ?

उत्तर :– गृहस्थी के प्रति हमें आसक्ति नष्ट करनी चाहिए। उसके लिए शास्त्रों में उल्लेख किए बंधनों का पालन करना होगा और उसके लिए हमारे आचार, विचार और उच्चार हमें सम्हालना आवश्यक है। गृहस्थी में सदाचार से रहो, नीति और धर्म का आचरण रहे, विचार से अत्यंत पवित्र रहे। किसी का द्वेष या ईर्ष्या न करें, दूसरे का अहित करने का न सोचें। उच्चार तो बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए, सतत् सभी से मीठी वाणी बोलें, जिव्हा से हम ईश्वर का नाम लेते हैं। उससे दूसरे के अंतः करण को दुःख न पहुँचे इसकी सतर्कता रखें।

प्रश्न 4 :– क्या व्यवहार में कपट करें ?

उत्तरः– व्यवहार में हम दूसरे का कपट पहचान कर उसके अनुसार आचरण करें इतना ही कपट हममें हो, किन्तु हम स्वयं कभी भी कपट न करें। अर्थात् हमारे दाँव या कपट लोगों को ठगने के लिए न हो, लोगों के कपट का शिकार हम न बने इतना ही व्यवहार हममें हो।

प्रश्न 5 :– क्या ईश्वर से लगाव रखने से गृहस्थी बिगड़ती है ?

उत्तरः– जिसने गृहस्थी का निर्माण किया, उसे भूलकर गृहस्थी क्या ठीक होगी ? कभी नहीं। इसलिए उसका स्मरण करने से ही गृहस्थी व्यवस्थित रहेगी।

प्रश्न 6 :– स्वार्थ का क्या अर्थ है ?

उत्तरः– स्वार्थ तीन प्रकार का हो सकता है– कायिक, वाचिक और मानसिक। देह को दूसरे के कारण कष्ट न होने पाये उतनी सावधानी से आचरण करना ही कायिक स्वार्थ कहलाता है। मेरे कहने को सभी स्वीकृती दे, किसी को भी कम अधिक बोलूँ तो वे चुपचाप सहन करें, ऐसी वृत्ति को वाचिक स्वार्थ कह सकते हैं। मेरे मतानुसार ही सब आचरण करें ऐसा दुराग्रह रखना, मेरी विचारधारा सही है ऐसी धारणा सभी रखें, इस तरह की हमारी इच्छा को मानसिक स्वार्थ कह सकते हैं।

प्रश्न 7 :– गृहस्थी में किससे सावधान रहे ?

उत्तरः– गृहस्थी में आप दो तरह के विद्वानों और धनिकों से सर्तक रहें। ऐसे विद्वान से जो शोषण करके भी यह दर्शाता है कि उसने कोई शोषण नहीं किया है, और ऐसे धनिक से जो अपने धन का भोंडा प्रदर्शन करता है।

प्रश्न 8 :– कैसे सांसारिक आनंद से सावधान रहें?

उत्तरः– कुत्ता हड्डी चबाता है, उस हड्डी में खून नहीं रहता, कुत्ता उसी के मसूड़ों का खून वह चूसता रहता है और मान बैठता है कि हड्डी से

खून आ रहा है, ऐसे सांसारिक आनंद से सर्तक रहें।

प्रश्न 9:– गृहस्थी में एक दूसरे के प्रति प्रेम कैसे बढ़ेगा?

उत्तरः– प्रेम करने में धन व्यय नहीं होता फिर भी प्रेम करना आसान नहीं है, इसका कारण हर व्यक्ति का स्वभाव अलग–अलग होता है, पसंदगी और दैव योग से प्रस्थापित ऋणानुबंध भी अलग–अलग रहते हैं। पारस्परिक प्रेम बढ़ाने के लिए कुछ बातें आवश्यक हैं। 1) छोटी–छोटी बातों की ओर ध्यान न देकर प्रत्येक के स्वभाव को थोड़ी सहुलियत दे, जिससे द्वेष नहीं होगा। 2) सबको प्रेम का जहां अवसर होगा वहां दृष्टि रखनी चाहिए। 3) कोई भी सूचना करनी हो, तो उस व्यक्ति विषयक न कहते हुए नम्रतापूर्वक और मीठे शब्दों में सूचना कहनी चाहिए। 4) स्वार्थ पर अंकुश लगाना और अर्थात मैं अपने लिए जितना जिम्मेदार हूं ऐसा लगता है उससे भी अधिक मैं औरों के लिए अधिक उत्तरदायी हूं ऐसा भान रखना। अंतिम विषयों पर चौतरफा हमला करना, बाहर से इन्द्रियों को संस्कारित करना और अंदर से मन को साधना में रखना।

प्रश्न 10 :– गृहस्थी सरल है या परमार्थ ?

उत्तरः– गृहस्थी से परमार्थ सरल है, क्योंकि गृहस्थी में अनेकों से संपर्क आता है, संबंध होता है, किन्तु परमार्थ में एकमात्र ईश्वर से संबंध आता है।

प्रश्न 11 :– गृहस्थी और परमार्थ में संतुलन कैसे बनायें?

उत्तरः– बहुत विशाल राजमहल बनाया तो भी उसे प्रसाधन कक्ष की आवश्यकता रहती है। उसी प्रकार गृहस्थी में परमार्थ की आवश्यकता रहती है। गृहस्थी ठीक से करने के बदले, उसी की आसक्ति मात्र में ही मत लगे रहो। सामर्थ्य के अनुसार परमार्थ करो, गृहस्थी अपने आप ही ठीक चलती रहेगी।

प्रश्न 12 :– गृहस्थ नीति से रहना याने किस तरह रहना?

उत्तरः– गृहस्थ नीति की तीन आधारभूत बातें हैं – एक पत्नी–एक पति व्रत, पूर्ण आपसी समन्वय एवं सहभागिता एवं ईश्वर से लगाव।

प्रश्न 13:– गृहस्थी अच्छी चल रही है, यह कैसे जाने ?

उत्तरः– गृहस्थी में यदि संतोष बना रहा हो, तो गृहस्थी अच्छी चल रही है ऐसा समझे।

प्रश्न 14 :– हम बच्चों में क्यों अटक जाते हैं ?

उत्तरः– हमारे बाल–बच्चे ईश्वर ने हमें दिए हैं, उनका रक्षण करें, यह हमारा दायित्व होगा। भगवत स्मरण में अपने कर्तव्यों को निभावो जिससे जीवन में आनंद उत्पन्न होगा।

प्रश्न 15 :– गृहस्थी में धन का कितना महत्व है ?

उत्तरः– पैसा भूत की भॉति होता है। उससे उचित काम करा लिया तो वह उपयोगी है, अन्यथा जी का जंजाल। व्यवहार में पैसा आवश्यक है, आप पैसा संग्रह करें इसमें कोई गलत बात नहीं है, किन्तु उसी में न लगे रहें। पैसा नीति से आचरण कर अपनी आवश्यकतानुसार अर्जित करना जरूरी है। अर्थोपार्जन में अपने संतोष का संतुलन न बिगाड़े।

प्रश्न 16 :– घर में कैसा आचरण करें ?

उत्तरः– हममें सहजता आनी चाहिए और मुख्यतः साधक के घर में, पति–पत्नी में परस्पर नैसर्गिक (इल दंजनतम) इतना प्रेम होना चाहिए कि अतिथि को यह न लगे की कब घर छोड़कर भागूँ ? घर से वापस जाने वाले को ऐसा लगे कि वह पुनश्च कब आ पाएगा।

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
औरन को सीतल करे, आपहु सीतल होइ।।
लघुता को प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी ले सक्कर चली, हाथी के सिर धूरि।।

समानता, विनम्रता व निरहंकारिता – गृहस्थी की अनिवार्यताएं हैं।

प्रातः स्मरणीय पूज्य बाबा बजरंगदास जी महाराज, चिचोटकुटी हरदा के प्रवचन संग्रह 'अमृत वाणी' से साभार

''आलस्यं हि मनुष्याणां
शरीरस्थ महारिपुः''
मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु
आलस्य ही तो है।

महापुरूषों के दाम्पत्य जीवन के संस्मरण

संकलनकर्ता– भूपेन्द्र रघुवंशी, मैनेजर इंडियन ऑयल कार्पोरेशन, इंदौर, मो0 9425602046

बापू व बा

सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में रहते थे। इस दौरान उन्होंने जातिभेद का अंत करने का निश्चिय किया। इसे कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने हर जात के लोगों को अपने घर बुलाना प्रारंभ किया। बापू की पत्नी कस्तूरबा को बा के नाम से जाना जाता था। वह आंगतुकों में से सबके बर्तन साफ करने के लिए तैयार थी, परंतु ईसाई आंगतुकों के झूठे बर्तनों को छूने से भी इंकार कर दिया। इस बात को लेकर बापू व बा में बहस होने लगी। बापू, बा को जितना समझाते, वह उतना ही विरोध करती, तब क्रोध में आकर बापू ने बा का हाथ पकड़कर उन्हें घर से निकालते हुए कहा कि– ''यदि तुम्हें यह काम नहीं करना है, तो यहॉ से चली जाओ और वे द्वार बंद करने लगे'' तब कस्तूरबा ने उनका हाथ छुड़ाते हुए घर के भीतर प्रवेश करते हुए कहा ''तुम्हें शर्म नहीं आती तो मुझे तो आती है। तुम्हीं बताओ मैं अकेली कहॉ जाऊँ ?''

बापू व बा के जीवन की इस घटना को छोड़कर शेष जीवन में बा, बापू की पूर्ण समर्पण के साथ अनुगामिनी बनी, उनके हर कार्य में उन्हें सहयोग दिया। यहॉ तक कि बापू के आंदोलन में सहयोग करते–करते ही 74 वर्ष में नजरबंदी की अवस्था में आगा खॉ महल, पूना में उनकी मृत्यु हुई।

टाइटैनिक

सन् 1912 में एक जहाज समुद्र में तेजी से डूब रहा था, सभी कोशिशें बेकार हो चुकी थीं। इस जहाज का नाम टाइटैनिक था। सभी मुसाफिर घबराहट में इधर–उधर भाग रहे थे। इन्हीं में से एक मुसाफिर श्रीमती इसाडोर स्टास और उनके पति श्री स्टास बिल्कुल शांत थे। वे दोनों अन्य मुसाफिरों को लाइफबोटों में बिठाने में सहयोग कर रहे थे। जो लाइफबोट उपलब्ध थी, उनमें किसी एक में एक यात्री को ही बिठाया जा सकता था। पति स्टास श्रीमती डोर को लाइफबोट में बैठाने के लिए विवश कर रहे थे तथा श्रीमती डोर अपने पति को लाइफबोट में बैठने के लिए कह रही थी। तभी पति ने बलपूर्वक श्रीमती डोर को लाइफबोट में बिठा दिया, परंतु वे उसमें बैठते ही वापस जहाज में आ गई व बड़े स्नेह से पति का हाथ पकड़कर कहा – 'प्राण प्यारे ! हम वर्षों इकट्ठे रहे हैं, अब हम बूढ़े हो गये हैं, मृत्यु में भी साथ ही रहेंगे। आप जहॉ जायेंगे, वहीं मैं जाऊँगी।'

डिजराइली

ब्रेंजामिन डिजराइली इंग्लैंड का प्रधानमंत्री था, उसने 33 वर्ष की आयु में 40 वर्ष की एक विधवा महिला मेरी एन. के साथ विवाह किया। उसका यह विवाह यद्यपि बेमेल था, उसकी पत्नी निरक्षर थी, परंतु उनमें कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वे उन्हें राजनीतिक परामर्श भी देती थी। उनका समर्पण अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ था। एक दिन पार्लियामेंट में किसी मसले पर वाद–विवाद सुबह 5:00 बजे तक चला। सुबह 5:00 बजे जब डिजराइली घर वापस आये तो उन्होंने देखा कि उनके स्वागत में उनकी पत्नी लैम्प व अँगीठी जलाए उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

कदा च न स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते।।

भावार्थः– परमेश्वर कभी किसी के किसी कर्म को निष्फल नहीं करता, न किसी निरपराध को दण्ड देता हैं, किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म में प्रत्येक प्राणिवर्ग उसकी व्यवस्था से कर्मानुसार फल के भागी बनते हैं।

:: गृहस्थी में मनन योग्य ::

विश्वनाथ गाड़ेश्वर, जिला न्यायालय, हरदा, मो0 9926322020

कहते हैं कि बवण्डर– (चक्रवात) – के ठीक बीच में एक ऐसा स्थान भी रहता है, जहॉ कोई हलचल नहीं। वहॉ वायु का तनिक भी प्रकोप नहीं रहता, प्रत्युत इतनी शान्ति रहती है कि यदि किसी छोटे शिशु को वहॉ सुलाया जा सके तो वह सुख की नींद सोता रहेगा। वायु का झकझोर उसे छूतक नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार इस संसार के कोहाहल के मध्य में प्रभु विराजित हैं तथा जहॉ वे हैं, वहॉ न तो जगत् की हलचल है और न त्रिताप की विषमयी ज्वाला ही, वहॉ सर्वदा और सर्वथा सुख–शान्ति भरी रहती है। जो कोई भी वहॉ पहुॅच जाता है, उसके प्राण शीतल हो जाते हैं। जगत् के उलट–फेर उस पर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते।

हम अपने जीवन पर विचार कर देखें तो पता चलेगा कि उसमें न जाने कितने चढ़ाव–उतार हुए हैं, कितनी बार हम हॅसे हैं और कितनी बार रोये हैं। संसार के प्रवाह में बहते हुए हम सदा चंचल बने रहते हैं। अब तक कोई भी ऐसा विश्राम स्थल हमें नहीं मिला, जहॉ हम थोड़ी देर के लिये भी आराम से टिक कर, शान्ति से स्थिर होकर, थकान मिटा सकें। थककर हम जिसका सहारा लेने चलते हैं, देखते हैं वह भी हमारी ही भॉति हलचल में है, सतत् उसी प्रवाह में बह रहा है। इस प्रकार संसार के थपेड़ों की चोट खाते–खाते हम सबकी इन्द्रियॉ व्याकुल हो गयी हैं, मन उद्विग्न हो उठा है और बुद्धि कुण्ठित हो चली है। इन्द्रियॉ यहॉ की वस्तुओं में सुख ढूॅढ़ने जाती हैं, पर सुख के बदे आगे या पीछे इन्हें प्राप्त होती है सदा विषैली ज्वाला ही। ये बुरी तरह झुलस जाती हैं। मन अनुकूलता ढूॅढ़ने जाता है, अमुक परिस्थिति ऐसी बन जाय, अमुक व्यक्ति ऐसा बन जाय, यों सोचता हुआ यहॉ की वस्तुओं में अपने योग्य आश्रय ढूॅढ़ने चलता है, पर इसे भी पहले या पीछे मिलती है भयानक प्रतिकूलता ही। आज तक किसी के लिये भी सभी बातें सदा और सर्वथा अनुकूल बन गयी हों, यह न कभी हुआ है न होगा। इसलिए अनुकूलता ढूॅढ़ने वाले मन को प्रतिकूलता प्राप्त होती है और उस समय वह हाहाकार कर उठता है। बुद्धि सारा विवेक लगाकर निर्णय देती है कि बस, इस काम में लगो, इस बार सफलता अवश्य मिलेगी। इस बार तुम्हारे सारे अभावों की पूर्ति ही जायगी, किंतु परिणाम यह होता है कि हम असफल हो जाते हैं अथवा कहीं सफल भी हुए, हमारा कोई–सा एक अभाव पूर्ण भी हो गया तो उसके साथ ही नये दसों–बीसों अभाव खड़े हो जाते हैं। अब इन नये अभावों की पूर्ति कैसे हो, इस विषय में बुद्धि कोई भी निर्णय नहीं कर पाती।

इस प्रकार हमारा जीवन इस संसार के बवण्डर में यहॉ से वहॉ उड़ता हुआ भ्रमण कर रहा है, सदा अशान्त बना हुआ है, किन्तु यदि हम बवण्डर से खिसककर, इसी के केन्द्र में विराजित प्रभु से जा लगें, उनकी छत्रछाया में विश्राम करने की ठान लें और साधनात्मक प्रयत्न में लग जायॅ तो निश्चय ही उनका सान्निध्य पा जायॅ और हमारी दशा सर्वथा सुधर जाय। उस समय यहॉ की हलचल चाहे कितनी ही भयानक, कितनी ही प्रबल क्यों न हो, हम उससे कभी विचलित नहीं हो सकते। हम प्रभु की गोद में चक्रवात के मध्य केन्द्र में स्थित शिशु की भॉति सुख से, चैन से जीवन बिता सकते हैं। संसार की हलचल हमें अभी तक प्रभावित करती है, जब तक हम संसार के मूल मध्य में स्थित प्रभु की शरण नहीं ग्रहण कर लेते।

लज्जा नारी का अमूल्य आभूषण है इसे पहनकर असुन्दर स्त्री भी आकर्षण का केन्द्र बन जाती है, यह नारी के चरित्र का दर्पण है।

विवाह-संस्कार में वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ

प्रयाग सिंह रघुवंशी (बड़े पापा) फतेहपुर गंजबासौदा, मो. 9516527474

विवाह के द्वारा वर–वधू को दाम्पत्य सूत्र में बंधने की स्वीकारोक्ति परिवार व समाज द्वारा हो जाती है, परंतु दोनों को अपने–अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए कुछ संकल्प लेना भी आवश्यक हो जाता है, इस हेतु विवाह संस्कार के पश्चात् वर व वधू से प्रतिज्ञाएँ करवाई जाती हैं, जिसे कि विवाह–संस्कार के पुरोहित उनसे स्वयं पढ़वाकर उसकी पूर्ति करवाते हैं।

वर की प्रतिज्ञाएँः–

01. पत्नी को अर्द्धांगिनी घोषित करने की प्रतिज्ञाः–

धर्मपत्नीं मिलित्वैव ह्येकं जीवनमावयोः ।

अद्यारभ्य यतो में त्वम्, अर्द्धांगिनीति घोषिता ।।

आज से धर्मपत्नी को अर्द्धांगिनी घोषित करते हुए, उसके साथ अपने व्यक्तित्व को मिलाकर एक नए जीवन की सृष्टि करता हूँ। अपने शरीर के अंगों की तरह धर्मपत्नी का ध्यान रखूँगा।

02. पत्नी को गृह–लक्ष्मी का अधिकार सौंपने की प्रतिज्ञाः–

स्वीकरोमि सुखेन त्वां गृहलक्ष्मीमहन्ततः।

मन्त्रयित्वा विधास्यामि सुकार्याणि त्वया सह ।।

प्रसन्नतापूर्वक गृहलक्ष्मी का महान अधिकार सौंपता हूँ और जीवन के निर्धारण में उसके परामर्श को महत्व दूँगा।

03. पत्नी के रूप, स्वास्थ्य, गुणदोष आदि के संबंध में असंतोष न व्यक्त करने की प्रतिज्ञाः–

रूप–स्वास्थ्य–स्वभावान्तु गुणदोषादीन् सर्वतः ।

रोगाज्ञान–विकारांश्च तव विस्मृत्य चेतसः।।

रूप, स्वास्थ्य, स्वभावगत गुण–दोष एवं अज्ञानजनित विकारों को चित्त में नहीं रखूँगा, उनके कारण असंतोष व्यक्त नहीं करूँगा। स्नेहपूर्वक इन्हें सुधारने या सहन करते हुए आत्मीयता बनाए रखूँगा।

04. पत्नी के साथ मित्रवत व्यवहार करने की प्रतिज्ञाः–

सहचरो भविष्यामि पूर्णस्नेहः प्रदास्यते।

सत्यता ममा निष्ठा च यस्याधारं भविष्यति।।

पत्नी का मित्र बनकर रहूँगा और पूरा–पूरा स्नेह देता रहूँगा। इस वचन का पालन पूरी निष्ठा और सत्य के आधार पर करूँगा।

05. पत्नी धर्म पालन करने की प्रतिज्ञाः–

यथा पवित्रचित्तेन पातिव्रत्यं त्वया धृतम्।

तथैव पालयिष्यामि पत्नीव्रतमहं ध्रुवम्।।

पत्नी के लिए जिस प्रकार पतिव्रत की मर्यादा कही गई है, उसी दृढ़ता से स्वयं पत्नीव्रत धर्म का पालन करूँगा। चिंतन और आचरण दोनों से ही परनारी से वासनात्मक संबंध नहीं जोड़ूँगा।

06. गृह–प्रबंधन में पत्नी को प्रधानता देने की प्रतिज्ञाः–

गृहस्यार्थव्यवस्थायां मन्त्रयित्वा त्वया सह।

संचालनं करिष्यामि गृहस्थोचित–जीवनम्।।

गृह– व्यवथा में धर्मपत्नी को प्रधानता दूँगा। आमदनी और खर्च का क्रम उसकी सहमति से करने की गृहस्थोचित जीवनचर्या अपनाऊँगा।

07. पत्नी की सुरक्षा करने की प्रतिज्ञाः–

समृद्धि, सुख, शान्तीनां रक्षणाय तथा तव।

व्यवस्थांत वै करिष्यामि स्वशक्तिवैभवादिभिः। ।

धर्मपत्नी की सुख–शांति तथा प्रगति–सुरक्षा की व्यवस्था करने में अपनी शक्ति और साधनों आदि को पूरी ईमानदारी से लगाता रहूँगा।

08. पत्नी से मधुर भाषण व श्रेष्ठ व्यवहार की प्रतिज्ञाः–

यत्नशीलो भविष्यामि सन्मार्गसेवितुं सदा।

आवयोः मतभेदांश्च दोषान्संशोध्य शान्तितः।।

अपनी ओर से मधुर भाषण और श्रेष्ठ व्यवहार बनाए रखने का पूरा–पूरा प्रयत्न करूँगा। मतभेदों और भूलों का सुधार शांति के साथ करूँगा। किसी के सामने पत्नी को लांछित–तिरस्कृत नहीं

करूँगा।

09. पत्नी के असमर्थ हो जाने पर भी कर्तव्य–पालन की प्रतिज्ञाः–

भवत्यामसमर्थायां विमुखायान्च कर्मणि।

विश्वासं सहयोगत्र्य मम प्राप्स्यसि त्वं सदा।।

पत्नी के असमर्थ या अपने कर्तव्य से विमुख हो जाने पर भी अपने सहयोग और कर्तव्यपालन में रत्तीभर भी कमी न रखूँगा।

वधू की प्रतिज्ञाएंः–

01. पति की अर्द्धांगिनी बनने की प्रतिज्ञाः–

स्वजीवनं मेलयित्वा भवतः खलु जीवने।

भूत्वा चार्धांगिनी नित्यं निवत्स्यामि गृहे सदा।।

अपने जीवन को पति के साथ संयुक्त करके नए जीवन की सृष्टि करूँगी। इस प्रकार घर में हमेशा सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनी बनकर रहूँगी।

02. पति के परिवारजन के साथ शिष्टता का व्यवहार करने की प्रतिज्ञाः–

शिष्टतापूर्वकं सर्वैः परिवारजनैः सह।

औदार्येण विधास्यामि व्यवहारं च कोमलम्।।

पति के परिवार के परिजनों को एक ही शरीर का अंग मानकर सभी के साथ शिष्टता बरतूँगी, उदारतापूर्वक सेवा करूँगी, मधुर व्यवहार करूँगी।

03. परिश्रमपूर्वक गृह–कार्य करने की प्रतिज्ञाः–

त्यक्त्वालस्यं करष्यामी गृहकार्ये परिश्रमम्।

भर्तुर्हर्षं हि ज्ञास्यामि स्वीयामेव प्रसन्नताम्।।

आलस्य को छोड़कर परिश्रमपूर्वक गृह कार्य करूँगी। इस प्रकार पति की प्रगति और जीवन विकास में समुचित योगदान करूँगी।

04. पति धर्म पालन करने की प्रतिज्ञाः–

श्रद्धया पालयिष्यामि धर्मं पतिव्रतं परम्।

सर्वदैवानुकूल्येन पत्युरादेशपालिका।।

पतिव्रत धर्म का पालन करूँगी, पति के प्रति श्रद्धाभाव बनाए रखकर सदैव उनके अनुकूल रहूँगी। कपट–दुराव न करूँगी, निर्देशों के अविलंब पालन का अभ्यास करूँगी।

05. सेवा, स्वच्छता एवं प्रियभाषण करने की प्रतिज्ञाः–

सुश्रूषणपरा स्वच्छा मधुर–प्रियभाषिणी।

प्रतिजाने भविष्यामि सततं सुखदायिनी।।

सेवा, स्वच्छता तथा प्रियभाषण का अभ्यास बनाए रखूँगी। ईर्ष्या, कुढ़न आदि दोषों से बचूँगी और सदा प्रसन्नता देने वाली बनकर रहूँगी।

06. मितव्ययी बनकर गृह–संचालन करने की प्रतिज्ञाः–

मितव्ययेन गार्हस्थ्यसञ्चालने हि नित्यदा।

प्रियतिष्ये च सोत्साहं तवाहमनुगामिनी।।

मितव्ययी बनकर घर का संचालन करूँगी, फिजूलखर्ची से बचूँगी। पति के आर्थिक या शारीरिक दृष्टि से असमर्थ हो जाने पर भी उत्साहपूर्वक सद्गृहस्थ के अनुशासन का पालन करूँगी।

07. पति के साथ मतभेद भूलाकर जीवनभर सक्रिय रहने की प्रतिज्ञाः–

देवस्वरूपो नारीणां भर्त्ता भवति मानवः।

मत्वेति त्वां भजिष्यामि नियता जीवनावधिम्।।

नारी के लिए पति देवस्वरूप होता है– यह मानकर मतभेद भुलाकर, सेवा करते हुए जीवनभर सक्रिय रहूँगी, कभी भी पति का अपमान न करूँगी।

08. पति के पूज्य व श्रद्धापात्रों को संतुष्ट रखने की प्रतिज्ञाः–

पूज्यास्त्व पितरो ये श्रद्धया परमा हि मे।

सेवया तोषयिष्यामि तान्सदा विनयेन च।।

जो पति के पूज्य और श्रद्धापात्र हैं, उन्हें सेवा तथा विनय द्वारा सदैव संतुष्ट रखूँगी।

09. परिवार के सदस्यों को एक सूत्र में रखने की प्रतिज्ञाः–

विकासाय सुसंस्कारैः सूत्रैः सद्भाववर्द्धिभिः।

परिवारसदस्यानां कौशलं विकसाम्यहम्।।

परिवार के सदस्यों में सुसंस्कारों के विकास तथा उन्हें सद्भावना के सूत्रों में बाँधे रहने का कौशल अपने अंदर विकसित करूँगी।

:: शिव-पार्वती विवाह ::

प्रस्तुतकर्ता–श्रीमती गायत्री शम्भूसिंह रघुवंशी, मो0 9425605859

श्रीरामचरितमानस में वर्णित शिव-पार्वती विवाह, सीताजी द्वारा रामजी को जयमाल पहनाना एवं सीताजी को अनुसूयाजी द्वारा पतिव्रत धर्म के प्रसंग भावार्थ सहित।

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई ।।
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी।।

शिवजी और पार्वतीजी द्वारा गणेश पूजन के उपरांत, महामुनियों ने वेदों में वर्णित रीति से विवाह कराया। पर्वतराज हिमाचल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ पकड़कर उन्हें भवानी (शिवपत्नी) जानकर शिवजी को समर्पण किया। ।।1।।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा ।।
बेदमन्त्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं ।।

जब महेश्वर (शिवजी) ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब (इन्द्रादि) सब देवता हृदय में बड़े ही हर्षित हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजी का जय–जयकार करने लगे। ।।2।।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना ।।
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू ।।

अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे। आकाश से नाना प्रकार के फूलों की वर्षा हुई। शिव–पार्वती का विवाह हो गया। सारे ब्राह्माण्ड में आनंद भर गया। ।।3।।

दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा ।।
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ।।

दासी, दास, रथ, घोड़े, हाथी, गायें, वस्त्र और मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न तथा सोने के बर्तन गाड़ियों में लदवाकर दहेज में दिए, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। ।।4।।

छन्द

दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो। का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो ।।
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो। पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो ।।

बहुत प्रकार का दहेज देकर, फिर हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा– हे शंकर! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? (इतना कहकर) वे शिवजी के चरणकमल पकड़कर रह गए। तब कृपा के सागर शिवजी ने अपने ससुर का सभी प्रकार से समाधान किया। फिर प्रेम से परिपूर्ण हृदय मैनाजी ने शिवजी के चरण कमल पकड़े (और कहा–)।

दोहा

नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।

छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ।।

हे नाथ! यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान (प्यारी) है। आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइएगा और इसके सब अपराधों को क्षमा करते रहिएगा। अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिए।

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई ।।

जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही ।।

शिवजी ने बहुत तरह से अपनी सास को समझाया। तब वे शिवजी के चरणों में सिर नवाकर घर गईं। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बिठाकर यह सुंदर सीख दी–।।1।।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा ।।

बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ।।

हे पार्वती! तू सदाशिवजी के चरणों की पूजा करना, नारियों का यही धर्म है। उनके लिए पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बातें कहते–कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए और उन्होंने कन्या को छाती से चिपटा लिया। ।।2।।

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहूँ सुखु नाहीं ।।

भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी ।।

(फिर बोलीं कि) विधाता ने जगत में स्त्री जाति को क्यों पैदा किया? पराधीन को सपने में भी सुख नहीं मिलता। यों कहती हुई माता प्रेम में अत्यन्त विकल हो गईं, परन्तु कुसमय जानकर (दुःख करने का अवसर न जानकर) उन्होंने धीरज धरा। ।।3।।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना ।।

सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी ।।

मैना बार–बार मिलती हैं और (पार्वती के) चरणों को पकड़कर गिर पड़ती हैं। बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता। भवानी सब स्त्रियों से मिल–भेंटकर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं। ।।4।।

छन्द

जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं।

फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं।।

जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।

सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले।।

पार्वतीजी माता से फिर मिलकर चलीं, सब किसी ने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिए। पार्वतीजी फिर–फिरकर माता की ओर देखती जाती थीं। तब सखियाँ उन्हें शिवजी के पास ले गईं। महादेवजी सब याचकों को संतुष्ट कर पार्वती के साथ घर (कैलास) को चले। सब देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में सुंदर नगाड़े बजाने लगे।

।। श्रीसीता का श्रीराम को जयमाल पहनाना ।।

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें । छबिगन मध्य महाछबि जैसें ।।

कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई ।।

सखियों के बीच में सीताजी कैसी शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत–सी छबियों के बीच में महाछबि हो। करकमल में सुन्दर जयमाला है, जिसमें विश्वविजय की शोभा छायी हुई है। ।।1।।

तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू ।।
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी ।।

सीताजी के शरीर में संकोच है, पर मन में परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसी को जान नहीं पड़ रहा है। समीप जाकर, श्रीरामजी की शोभा देखकर राजकुमारी सीताजी चित्र में लिखी सी रह गयीं। ।।2।।

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई ।।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ।।

चतुर सखीने यह दशा देखकर समझाकर कहा–सुहावनी जयमाला पहनाओ। यह सुनकर सीताजी ने दोनों हाथों से माला उठायी, पर प्रेम के विवश होने से पहनायी नहीं जाती। ।।3।।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला ।।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली ।।

(उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं) मानो डंडियों सहित दो कमल चन्द्रमा को डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छबि को देखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीताजी ने श्रीरामजी के गले में जयमाला पहना दी। ।।4।।

सोरठा

रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन ।।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन ।।

श्रीरघुनाथजी के हृदय पर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे। समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गये मानो सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह सिकुड़ गया हो।

पुर अरू ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे ।।
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा ।।

नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। दुष्टलोग उदास हो गये और सज्जनलोग सब प्रसन्न हो गये। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय–जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं।

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं ।।
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं ।।

देवताओं की स्त्रियाँ नाचती–गाती हैं। बार–बार हाथों से पुष्पों की अज्जलियाँ छूट रही हैं। जहाँ–तहाँ ब्राम्हण वेदध्वनि कर रहे हैं और भाटलोग विरूदावली (कुलकीर्ति) बखान रहे हैं।

महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरि सिय भंजेउ चापा ।।
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी ।।

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकों में यश फैल गया कि श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ दिया और सीताजी को वरण कर लिया। नगर के नर–नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलाकर (सामर्थ्य बहुत अधिक) निछावर कर रहे हैं।

सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारू मनहुँ एक ठोरी ।।

सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता ।।

श्रीसीता–रामजी की जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो सुन्दरता और श्रृंगार रस एकत्र हो गये हों। सखियॉ कह रही हैं–सीते! स्वामी के चरण छुओ, किन्तु सीताजी अत्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं।

दोहा

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।।

मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ।।

गौतमजी की स्त्री अहल्या की गति का स्मरण करके सीताजी श्रीरामजी के चरणों को हाथों से स्पर्श नहीं कर रही हैं। सीताजी की अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मन में हॅसे।

।। श्रीसीता अनुसुइया मिलन - पतिव्रत धर्म कथन ।।

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीत ।।

रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई ।।

फिर परम शीलवती और विनम्र श्रीसीताजी (आत्रिजी की पत्नी) अनसूयाजी के चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषि पत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीष देकर सीताजी को पास बैठा लिया। ।।1।।

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए ।।

कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ।।

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाए, जो नित्य–नए निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषि पत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखान कर कहने लगीं। ।।2।।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ।।

अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही ।।

हे राजकुमारी! सुनिए– माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही (सुख) देने वाले हैं, परन्तु हे जानकी ! पति तो (मोक्ष रूप) असीम (सुख) देने वाला है। वह स्त्री अधम है, जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती। ।।3।।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी ।।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।।

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री– इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन–।।4।।

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ।।

ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति–भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए, बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है। ।।5।।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं ।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ।।

जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत में (मेरे पति को छोड़कर) दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है। ।।6।।

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ।।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ।।

मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराए पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो (अर्थात समान अवस्था वाले को वह भाई के रूप में देखती है, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है।) जो धर्म को विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्न श्रेणी की) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं।।।7।।

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ।।
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ।।

और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। पति को धोखा देने वाली जो स्त्री पराए पति से रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है। ।।8।।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ।।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई ।।

क्षणभर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है। ।।9।।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई ।।

किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में) विधवा हो जाती है। ।।10।।

सोरठा

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ।।

स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पतिव्रत धर्म के कारण ही) आज भी ''तुलसीजी'' भगवान को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं।

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ।।

हे सीता! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले–लेकर स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी। तुम्हें तो श्री रामजी प्राणों के समान प्रिय हैं, यह (पतिव्रत धर्म की) कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कही है।

विवाह दिवस कैसे मनाए

सुरेन्द्र सिंह रघुवंशी, एडवोकेट मो. 9584896415, संतोष रघुवंशी, स.उ.नि. मप्र पुलिस मो0 9926807004

हर गृहस्थ मानव समाज की एक सुगंठित इकाई है। समाज परिवारों से ही बनता है। हमें जैसा समाज चाहिये, उसके अनुसार हमें लोगों के गृहस्थ जीवन का ढांचा खड़ा करना होगा। माता–पिता द्वारा घर का जैसा वातावरण बनाया जाता है, उसी अनुरूप भाव तरंगे बालकों के कोमल अंगों में स्वयंमेव चली जाती है। उनके व्यक्तित्व के 3/4 भाग का निर्माण इसी बाल्यावस्था में हो जाता है व बड़े होकर वे इसी अनुसार बनते हैं। आज नई पीढ़ी में हमें जो दोष/दुर्गुण दिखाई पड़ते हैं, उसमें अधिकांश दोष उनके माता–पिता का ही है। इस प्रकार आज के समय की यह महती आवश्यकता है कि परिवारों में किस प्रकार दाम्पत्य प्रेम को सुरक्षित रखा जावे।

इस प्रकार जन्मोत्सव के अनुसार विवाह दिवसोत्सव (उंततपंहम ंददपअमतेंतल) मनाने की परस्परा भी वर्तमान समय में प्रारंभ हुई है, जिसमें वर–वधू अपना विवाह दिवसोत्सव मनाते हैं। गायत्री परिवार के संस्थापक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने विवाह दिवसोत्सव मनाने की विधि बताई है, जो निम्न प्रकार हैः–

सामान्य तौर पर हर विवाह में गायत्री यज्ञ किया जाना प्रमुख होता है, अधिकांश तौर पर विवाह के दिवसोत्सव का कार्यक्रम सायंकाल में संपन्न होता है, इसलिए इसे गुरूदेव द्वारा बताई गई गायत्री यज्ञ की सरल विधि दीपयज्ञ के माध्यम से पूरा किया जाता है। दीपयज्ञ के पूर्व ग्रंथिबंधन, अश्मारोहण, पाणिग्रहण, सप्तपदी एवं सुमंगली की क्रिया बताई गई है।

ग्रंथिबंधन में पति–पत्नी के कंधों पर दुपट्टे को रखकर उसके छोरों में चावल, पुष्प, दूर्वा, हल्दी एवं सुपारी आदि रखकर उनकी गांठ बांधी जाती है। इस क्रिया का अर्थ दो आत्माओं का आपस में घुल जाना है। इसके माध्यम से दोनों का पृथक व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है व उनका स्वरूप दो शरीर एक आत्मा का हो जाता है।

अश्मारोहण के अंतर्गत पति–पत्नी पत्थर की शिला पर अपना दाहिना पैर इस विश्वास के साथ रखते हैं कि जिस प्रकार यह शिलाखण्ड अपने–आपमें सुदृढ़ है, उसी प्रकार हम भी आपस में एक–दूसरे से परस्पर विश्वास के साथ सुदृढ़ रहेंगे व उनके उपर जो उत्तरदायित्व आया है, उसका निर्वाह वे भली प्रकार करेंगे।

पाणिग्रहण इसका अर्थ एक–दूसरे को सहारा देना व जीवन की विषम परिस्थितियों में एक–दूसरे का हाथ पकड़े रहना है। जब कभी जीवनसाथी में रोग विक्षिप्तता, निर्धनता या कुरूपता आ जाये, तब भी उसका हाथ पहले जैसा पकड़े रहने का भाव इसके अंतर्गत है। जीवनसाथी जब एक–दूसरे का हाथ पकड़कर जीवन क्षेत्र में उतरते हैं तो दोनों का एक–दूसरे के प्रति अविश्वास नहीं रहता है।

सप्तपदी इसके अंतर्गत पति–पत्नी सात बार कदम मिलाकर आगे बढ़ने का पुनर्संकल्प, सप्तपदी के सात वचनों के संबंध में लेते हैं।

सुमंगलीः– विवाह दिवसोत्सव की पॉचवीं क्रिया सुमंगली है, जिसमें पति–पत्नी एक–दूसरे को तिलक लगाते हैं व पति, पत्नी की मांग में सिंदूर भरकर उसके सुहाग को बनाये रखने का आश्वासन देता है।

विवाह दिवस के दौरान इन क्रियाओं की विस्तृत व्याख्या भी की जाती है तथा इस बात पर भी विचार किया जाता है कि पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन में क्या कमियॉ हैं व उन्हें दूर करने के लिए क्या प्रयास होना चाहिये। इस उत्सव का उ्ददेश्य जीवन में अधिक मधुरता उत्पन्न करना व विकृतियों को दूर करना है। इस दिन पति–पत्नी अपनी एक बुराई छोड़ने व एक अच्छाई अपनाने की भी प्रतिज्ञा करते हैं।

इन सबसे पति–पत्नी वैवाहिक जीवन में एक नये उल्लास व आनंद से आगे बढ़ते हैं।

दाम्पत्य संबंधों पर महापुरूषों के विचार

श्रीमती सावित्री रघुवंशी, श्रीमती रामश्री रघुवंशी

मनुस्मृति – सुयोग्य पति पत्नी को सम्मान की अधिकारिणी बना देता है।

डॉ. राधाकृष्णन्– पति–पत्नी पक्के और सच्चे साथी हैं। वे दोनों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न करते हैं।

प्रेमचन्द – जब किसी पुरूष का एक स्त्री के साथ पति–पत्नी का सम्बन्ध हो जाए तो पुरूष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरूद्ध आचरण न दिखे, तब तक उस सम्बन्ध को निभाहे।

महात्मा गांधी – पत्नी पति की अर्द्धांगिनी और परम मित्र है। संसार में जिसका कोई सहायक न हो, उसको पत्नी जीवन–यात्रा में साथ देती है।

बृहत्पाराशर संहिता – केवल घर में रहने से कोई गृहस्थ नहीं होता, पत्नी के साथ रहने से मनुष्य गृहस्थ, कहलाता है। जहॉ भायी है वही घर है। भार्याहीन गृह तो वन–तुल्य है।

डॉ. राधाकृष्णन् – हिन्दुओं का विवाह मुख्यतः एक सहयोग भावना का आदर्श है।

प्रेमचन्द – जो विवाह को धर्म का बंधन नहीं समझता है, उसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है, वह पशु है।

कबीर

पतिबरता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बच्चा जो लंघना, तो भी घास न खाय।।

विवाहो गद्यते लोके शक्तिशक्तिमतोरिव।
एकीकरणमुभयोरात्मनोरिति च श्रुतिः।।

''विवाह'' दो आत्माओं का एकीकरण है, यह श्रुति का वचन है।

पति–पत्नि दोनों की आत्मायें शक्ति और शक्तिमान के एकीकरण की भांति हैं।

नारी के बिना पुरूष की बाल्यावस्था असहाय है, युवावस्था सुख रहित है और वृद्धावस्था सच्चे और वफादार साथी से रहित है। नारी नर की सहचरी, उसके जीवन की रक्षक, उसकी गृहलक्ष्मी तथा उसे देवत्व तक पहुंचाने वाली साधिका है। नारी की चरम सार्थकता मातृत्व में है। वह अपने पति और पुत्रों के साथ आनन्द से रहती है तथा उसके समक्ष संसार का वैभव भी तुच्छ है। विश्व की कोई वस्तु इतनी मनोहर नहीं होती जितनी की सुन्दर और सुशील नारी।

नारी की आत्मा प्रेम में निवास करती है, पारस्परिक प्रेम हमारे सभी आनंदो का स्त्रोत है। प्रेम की कोई जाति, धर्म नही होता, प्रेम का देवता अंधा होता है। वह ऑखों से नहीं हृदय से देखता है। मनुष्य की सभी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने वाला प्रेम भरा विचार है, इससे ही सृष्टि का जन्म होता है, उसी से उसकी व्याख्या होती है, व उसी में उसका लय होता है।

श्रीमती रामश्री–सरदार सिंह रघुवंशी मो. 7692053388, श्रीमती सावित्री–भगवानसिंह रघुवंशी, मो. 7389595907

और अंत में स्मरण-नमन.....

संकल्प रघुवंशी, डिप्टी मैनेजर (कार्पोरेट फायनेंस), विप्रो (WIPRO), बैंगलोर

आज विवाह के अवसर पर, बचपन में झाकने पर मुझे मेरे दादा–दादी और नानी याद आते है। देवत्व को प्राप्त कर चुके मेरे दो पीढ़ी पहले के उक्त व्यक्तित्वों का सादर पुण्य–स्मरण–नमन :–

मेरे दादाजी

मेरे पूज्य दादाजी स्व0 घासीराम सिंह जी का जीवन सादगीपुर्ण और धर्म–कर्म से लबालब भरा था। एक इंसान की दृष्टि से उन्होंने जीवन के हर व्यवहार में एक आदर्श उदारता और निर्लिप्तता को बनाए रखा, वे स्थितप्रज्ञ रहे। वे जीवन के अंतिम समय तक कर्मठता यानी चरैवेति के सिद्धांत पर चलते रहे। मुझे उनके साथ रहने का कम समय मिला।

शत् शत् वंदन दादा, न्योछावर तन मन दादा ।

अमल धवल चरणों पर, अर्पित भावों का चंदन दादा ।।

मेरी दादीजी

मेरी पूज्य दादीजी श्रीमती द्रोपदी बाई जीवन के कठोरतम संघर्षो को खुशी–खुशी झेलती रही। बचपन में वे मेरे साथ भोपाल, आष्टा, मुलताई, खरगौन, इंदौर रहीं। अपनी जिंदगी के अंतिम पडाव में वे सिवनी आयीं। वे मुझे बहुत प्रेम करती थीं, तथा प्रेम से मुझे भैइया बोलती थीं। मेरी दादी पुत्रियों को प्रेम से 'बिन्नी' बोलती थी, मैं भी जब कभी दादी को 'बिन्ना जी' कहकर बोलता था तो वे केवल मुस्कुरा देती थी।

सूनेपन में याद हो आती दादी, सपने में आशीषें दे जाती दादी।

मन के मंदिर में क्यों होले–होले, तनमय होकर झांझ बजा जाती दादी।।

मेरी नानीजी

मेरी पूज्य नानीजी श्रीमती ताराबाई ने जीवन के कठोरतम संघर्षो में कभी किस्मत को कोसा नहीं, लाचारी के जीवन दर्शन को ओढा नहीं। उन्होंने मेहनत लगन और निष्ठा की खुशबू से हंसते हुए मुश्किलों की गर्द को साफ कर परिवार को गुलजार करने में कोई कसर छोड़ी नहीं। मेरी नानी पहले भी थीं, आज भी हैं और कल भी रहेंगी।

नर्मदा बहती है, हमसे यह कहती है ।

उनकी अविरल धारा कभी न रूकती हैं ।।

प्रशंसा वह हथियार है जिससे शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है। यदि तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारी प्रशंसा करे तो इसके पहले तुम दूसरों की प्रशंसा करना सीखों। लोक प्रशंसा प्रायः सभी को प्रिय होती है।

प्रार्थना ऐसे करो मानो सब कुछ ईश्वर पर निर्भर है, काम ऐसे करो मानो सब कुछ मनुष्य पर निर्भर है।

संपादक की कलम से

सनातन धर्म में पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तर के संबंधों का संस्कार

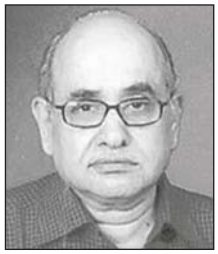

दुनिया के सभी धर्मों में विवाह को स्त्री–पुरुष के मध्य अनुबंध की संज्ञा दी जाती है परंतु हमारा सनातन धर्म परिणय बंधन को पति–पत्नी के जन्म–जन्मांतर का संबंध बनाने वाले संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

अनादि, अनंत, निर्गुण एवं निराकार परमात्मा सृष्टि–रचना हेतु स्वयं को पुरुष एवं शक्ति स्वरूपा प्रकृति में विभाजित करते हैं। मनु कहते हैं– द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरषोऽभवत। अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः। अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ में परमात्मा ने स्वयं को दो भागों में विभक्त किया, वे आधे में पुरुष और आधे में नारी हो गए। इस प्रकार संसार में प्रवाहमान स्त्री–पुरुष दो समानांतर धाराओं के संयोग से जीवन नित नए स्वरूपों में गतिमान बना रहता है। जीवों में श्रेष्ठ मानवजाति का अस्तित्व भी स्त्री–पुरुष के पारस्परिक मिलन से प्रादुर्भूत होने वाली संतान पर आश्रित है। सनातन धर्म के मनीषियों ने इस मिलाप में उच्छृंखल विषय–भोग की प्रवृति पर नियंत्रण हेतु विवाह संस्कार बनाया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम की व्यवस्था की गई। ब्रह्मचर्य में शिक्षा–दीक्षा पूरी कर स्त्री–पुरुष दांपत्य–सूत्र में बँधकर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं।

हिंदू शास्त्रों में विवाह के तीन प्रमुख उद्देश्य बताए गए हैं। प्रथम लक्ष्य अनियंत्रित भोग–विलास की पशु–प्रवृत्ति को नियंत्रित कर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, ऐहलौकिक, पारलौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के साथ सांसारिक सुख प्राप्त करते हुए दोनों की पूर्णता सिद्ध करना है। द्वितीय उत्तम संतान से वंशवृद्धि एवं तृतीय उद्देश्य है मधुर समन्वय से पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन को सुव्यवस्थित बनाना।

पति–पत्नी का एक दूसरे के प्रति निश्छल प्रेम, सम्पूर्ण समर्पण एवं अटूट विश्वास ही सफल दांपत्य जीवन का मूल आधार है। इसकी शुरुआत विवाह बंधन के समय सप्तपदी गमन के साथ वर–वधू द्वारा दिए गए वचनों से ही हो जाती है। कन्या कहती है तीर्थ, व्रतोद्यापन, यज्ञ, दान, हव्यदान द्वारा देवताओं का पूजन, कुटुम्ब की रक्षा एवं पालन, आय–व्यय की व्यवस्था, निर्माणकार्य, स्वदेश या परदेश में व्यापार आदि जो कुछ तुम करोगे, सब में मैं सदा तुम्हारी वामांगिनी रहूँगी। तुम कभी परस्त्री की ओर आकृष्ट

नहीं होना इत्यादि। वह यह भी कहती है कि श्धन–धान्य, मिष्ठान्न आदि घर की सभी चीज़ें मेरे अधीन रहेंगी। मैं सदा मृदुभाषी, कुटुम्ब की रक्षा करने वाली, दुख में धीर और सुख में प्रसन्न रहूँगी। पतिपरायणा होकर तुम्हारे साथ ही विहार करूँगी, तुम्हारे सिवा अन्य पुरुष को पुरुष नहीं समझूँगी। तुम्हारे दुख में दुखी और सुख में सुखी रहते हुए आज्ञा का पालन करूँगी। धर्म, अर्थ एवं काम के साधक सभी कार्यों में साथ रहूँगी। मेरी इन प्रतिज्ञाओं में अन्तर्यामी देवतागण साक्षी रहें, मैं कभी तुम्हारी वंचना नहीं करूँगी। वर सभी बातों की स्वीकृति देता हुआ कहता है श्अपना हृदय मेरे काम में लगाओ, अपना चित्त मेरे चित्त के अनुरूप करो, अपने को मेरे मन से मिलाकर वचनों का पालन करो। प्रजापति हमें एक दूसरे को प्रसन्न करने में प्रवृत्त करें। हम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करने में सदैव तत्पर रहें। यदि पति–पत्नी अग्नि को साक्षी मानकर दिए गए वचनों का पालन करें तो कोई कारण नहीं कि उनका जीवन सुखमय न बने।

भगवान शिव और माता पार्वती का दिव्य अर्द्धनारीश्वर स्वरूप पति–पत्नी का अपने स्व को विगलित कर एक दूसरे में आत्मलीन हो जाने की पराकाष्ठा है। इस विलक्षण तथा अलौकिक रूप में शिवा के साथ एकाकार हो चुके शिव उनका कितना ध्यान रखते हैं इसका उदाहरण देखिए– आत्मीयं चरणं दधाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशंकया। तल्पे किं च मृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजैरन्तरूप्रेमभरालसां प्रियतमामंके दधानो हरः। अर्थात् प्रेमपूरित अन्तरूकण वाली अपनी प्रियतमा उमा को अंक (अर्धांग) में धारण किए हुए अर्द्धनारीश्वर भगवान शंकर, पार्वती को परिश्रम से बचाने के लिए सब काम अपने पुरुषभाग के अंगों से ही लेते हैं। चलते समय ऊँची–नीची भूमि पर पहले अपना ही पैर रखते हैं। गिरिराजकिशोरी थक न जाएँ इस आशंका से वे अपने हाथ से फूल तोड़ते हैं तथा मृगचर्म बिछायी हुई शय्या पर शयन करते समय अपने ही भाग के अंगों को नीचे रखकर नींद लेते हैं।

आवश्यकता है कि हम सभी अपनी संस्कृति के अनुकरणीय मार्गदर्शन को अपनाकर सुखी दांपत्यजीवन के साथ उत्कृष्ट परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहभागी बनें।

रघुकलश का विशेष अंक विशेष रूप से वरिष्ठ न्यायाधीश, जिला जज हरदा श्री शंभू सिंह रघुवंशी के सौजन्य से उनके सुपुत्र संकल्प और सौ. मानसी के परिणोत्सव पर प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक के प्रकाशन के लिए उन्होंने जो सहयोग दिया है उसके लिए रघुकलश परिवार उनका आभारी है और पत्रिका की तरफ से संकल्प और मानसी के मंगलमय जीवन की कामना करते हुए उन्हें अनेकानेक बधाईयां और शुभकामनाएं देता है। भविष्य में जो भी सामाजिक बंधु इस प्रकार के विशेषांक प्रकाशित कराने के इच्छुक हों तो उन्हें भी पूरा अवसर प्रदान किया जाएगा।

– अरूण पटेल

हरनाम सिंह, फतेहपुर

प्रयाग सिंह, फतेहपुर अजय सिंह, चक पुरवाई भगवान सिंह, जुगयाई

हरीसिंह, मेवली

राजेन्द्र सिंह, नंदूरवार गोविंद सिंह, खुरई

समस्त
फोटोग्राफ्स
संकल्प–मानसी
सगाई रस्म
13.02.2016
होटल कोर्टयार्ड
मरियट, डी0 बी0 मॉल
भोपाल, से।

प्रहलाद सिंह, जुगयाई राजेन्द्र सिंह, चक पुरवाई शम्भू सिंह, फतेहपुर संतोष सिंह, भागीरथ सिंह एवं विजय सिंह–मेवली

Sankalp
weds Mansi

"ONE MOMENT, TWO HEARTS, THREE KNOTS, SEVEN STEPS & A LIFETIME TOGETHERNESS"